वार्षिक रु. ६० मूल्य रु. ८.००

विवेक-ज्योति

वर्ष ४९ अंक ४ अप्रैल २०११

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छ.ग.)

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ।।

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

अप्रैल २०११

प्रबन्ध सम्पादक

स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक

स्वामी विदेहात्मानन्द

वर्ष ४९
अंक ४

वार्षिक ६०/– **एक प्रति ८/–**

५ वर्षों के लिये – रु. २७५/–

आजीवन (२५ वर्षों के लिए) – रु. १,२००/–

(सदस्यता -शुल्क की राशि स्पीडपोस्ट मनिआर्डर से भेजें अथवा बैंक-ड्राफ्ट – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएँ

विदेशों में – वार्षिक ३० डॉलर; आजीवन ३७५ डॉलर (हवाई डाक से) २०० डॉलर (समुद्री डाक से)

संस्थाओं के लिये –

वार्षिक ९०/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. ४००/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५

आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, २२२४११९

(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)

अनुक्रमणिका

मुद्रक : संयोग ऑफसेट प्रा. लि., बजरंगनगर, रायपुर (फोन : ८१०९१ २७४०२)

प्रिंट आर्डर – २३,५००

लेखकों से निवेदन

पत्रिका के लिये रचना भेजते समय निम्न बातों पर ध्यान दें –

(१) धर्म, दर्शन, शिक्षा, संस्कृति तथा किसी भी जीवनोपयोगी विषयक रचना को 'विवेक-ज्योति' में स्थान दिया जाता है।

(२) रचना बहुत लम्बी न हो। पत्रिका के दो या अधिक-से-अधिक चार पृष्ठों में आ जाय। पाण्डुलिपि फूलस्केप रूल्ड कागज पर दोनों ओर यथेष्ट हाशिया छोड़कर सुन्दर हस्तलेख में लिखी या टाइप की हो। भेजने के पूर्व एक बार स्वयं अवश्य पढ़ लें।

(३) लेख में आये उद्धरणों के सन्दर्भ का पूरा विवरण दें।

(४) आपकी रचना डाक में खो भी सकती है, अत: उसकी एक प्रतिलिपि अपने पास अवश्य रखें। अस्वीकृति की अवस्था में वापसी के लिये अपना पता लिखा हुआ एक लिफाफा भी भेजें।

(५) 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशनार्थ कवितायें इतनी संख्या में आती हैं कि उनका प्राप्ति-संवाद देना सम्भव नहीं होता। स्वीकृत होने पर भी उसके प्रकाशन में ६-८ महीने तक लग सकते हैं।

(६) अनुवादित रचनाओं के मूल स्रोत का पूरा विवरण दिया जाय तथा उसकी एक प्रतिलिपि भी संलग्न की जाय।

(७) 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त मतों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होगी और स्वीकृत रचना में सम्पादक को यथोचित संशोधन करने का पूरा अधिकार होगा।

(८) 'विवेक-ज्योति' के लिये भेजी जा रही रचना यदि इसके पूर्व कहीं अन्यत्र प्रकाशित हो चुकी हो या प्रकाशनार्थ भेजी जा रही हो, तो उसका भी उल्लेख अवश्य करें। वैसे इसमें मौलिक तथा अप्रकाशित रचनाओं को ही प्राथमिकता दी जाती है।

सदस्यता के नियम

(१) 'विवेक-ज्योति' पत्रिका के सदस्य किसी भी माह से बनाये जाते हैं। सदस्यता-शुल्क की राशि यथासम्भव स्पीड-पोस्ट मनिआर्डर से भेजें या बैंक-ड्राफ्ट - 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवायें। यह राशि भेजते समय एक अलग पत्र में अपना पिनकोड सहित पूरा पता और टेलीफोन नम्बर आदि की पूरी जानकारी भी स्पष्ट रूप से लिख भेजें।

(२) पत्रिका को निरन्तर चालू रखने हेतु अपनी सदस्यता की अवधि पूरी होने के पूर्व ही नवीनीकरण करा लें।

(३) पत्रिका न मिलने की शिकायत माह पूरा होने पर ही करें। उसके बाद अंक उपलब्ध रहने पर ही पुन: प्रेषित किया जायेगा।

(४) अंक सुरक्षित पाने हेतु प्रति अंक ६/- रूपये अतिरिक्त खर्च कर इसे वी.पी. पोस्ट से मँगाया जा सकता है। यह राशि प्रति माह अंक लेते समय पोस्टमैन को देनी होगी, अत: इसे हमें मत भेजें।

(५) सदस्यता, एजेंसी, विज्ञापन या अन्य विषयों की जानकारी के लिये 'व्यवस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय' को लिखें।

विवेक-ज्योति के आजीवन सदस्यों की सूची

१२४०. डॉ. चिन्मय गुप्ता, पालाम विहार, गुड़गाँव (हरियाणा)
१२४१. श्री मुकेश कुमार, रहमतपुर, पो.असरगंज, मुंगेर (बिहार)
१२४२. श्री एस. एन. तिवारी, बाद (रिफईनरी नगर) मथुरा, (उ.प्र.)
१२४३. श्री विजय कुमार, चोपड़ा नगर, जि. पूर्णिया (बिहार)
१२४४. सुश्री पूनम सेवकानी, साबरमती, अहमदाबाद (गुज.)
१२४५. सुश्री कोमल कृष्णानी, चाँदखेड़ा, अहमदाबाद (गुजरात)
१२४६. प्राचार्य, आत्माराम कुमारसभा स्कूल, पटियाला (पंजाब)
१२४७. श्री आर. पी. चौबे, राजीव गाँधी वार्ड, कटनी (म.प्र.)
१२४८. डॉ. शीला जैन, सादुलगंज, बीकानेर (राजस्थान)
१२४९. श्री गोपेश द्विवेदी, बोहतरत रोड, बिलासपुर (छग.)
१२५०. श्री गोपाल भाटी, चोपासनी रोड, जोधपुर (राजस्थान)
१२५१. डॉ. चेतना के. ठाकुर, अडाजन, सूरत (गुजरात)
१२५२. श्री काशीराम, बेगम बाजार, हैदराबाद (आ.प्र.)
१२५३. श्रीमुकेश शर्मा, बगीचा, जिला - जशपुर (छ.ग.)
१२५४. श्री अनिल मोदी, रेसकोर्स रोड, इन्दौर (म.प्र.)
१२५५. डॉ. सीमा सिंह जोकरकर, वानावाड़ी, पूणे (महाराष्ट्र)
१२५६. डॉ. श्यामली चटर्जी, टाटीबंध, रायपुर (छ.ग.)
१२५७. पं. वै. रंगनाथ श्रीनिवास जोशी, कसमेश्वर, नागपुर (महा.)
१२५८. श्रीमती ममता सुरेश तिवारी, बेमेतरा, जिला - दुर्ग (छ.ग.)
१२५९. श्री भीमसेन सेतपाल, पॉवर हाऊस, भिलाई (छ.ग.)
१२६०. श्री नरेन्द्रसिंह पटेल (वामारी), सोनभद्र, होशंगाबाद (म.प्र.)
१२६१. श्री नवीन दीक्षित, मालखेड़ी रोड, होशंगाबाद (म.प्र.)
१२६२. डॉ. जे. आर. देसाई, मौदहापारा, रायपुर (छ.ग.)
१२६३. श्री लक्ष्मण परब गाँवकर, खोरलिम, मपुसा बरडेज (गोवा)
१२६४. श्री एन. एच. अग्निहोत्री, भुसावल, जिला जलगाँव (महा.)
१२६५. श्री भूषण श्यामसुन्दर जाजू, गोरक्षण रोड, अकोला (महा.)
१२६६. श्री दिलीप मित्तल, कमल चौक, नीमच (म.प्र.)
१२६७. श्री एम. के. ध्रुव, बगीचा, जिला जशपुर (छ.ग.)
१२६८. वाचनालय, शा.उ.मा.विद्यालय, पो. देवरी, रायपुर (छ.ग.)
१२६९. श्री अरुण सिंह, गोमती नगर, लखनऊ (उ.प्र.)
१२७०. श्री बृजेश कुमार सिंह, गौतम नगर, गोरखपुर (उ.प्र.)
१२७१. श्री नागेन्द्र कौशिक, विकास नगर, भिवानी, (हरयाणा)
१२७२. श्री मदनलाल मो. बोहरा, इचलकरंजी, कोल्हापुर (महा.)
१२७३. श्री सुरेन्द्र गुप्ता, आई.पी. एक्सटेंशन, प्रतापगंज, दिल्ली
१२७४. श्री योगानन्द दत्ता, न्यू शोहबती बाग, इलाहाबाद (उ.प्र.)
१२७५. श्री प्रमोद देशमुख, आनन्दविहार कॉ., अमरावती (महा.)
१२७६. डॉ. अमित तरफदार, स्टेडियम रोड, बरेली (उ.प्र.)
१२७७. श्रीमती पूनम बंसल, अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)
१२७८. श्री आनन्द शर्मा, जिन्दल रोड, राजनाँदगाँव (छ.ग.)
१२७९. श्री बृजमोहन अग्रवाल, पुराना सदर बजार, रायगढ़ (छ.ग.)

पुरखों की थाती

अवेक्षस्व यथा स्वैः स्वैः कर्मभिः व्यापृतं जगत्।
तस्मात् कर्मैव कर्तव्यं नास्ति सिद्धिः अकर्मणः।।२८।।

– देखो, सारा जगत् चूँकि अपने अपने कर्मों में लगा हुआ है, अतएव कर्म करना ही उचित है। अकर्मण्य व्यक्ति को कभी सिद्धि नहीं मिलती। (महाभारत)

अपहाय निजं कर्म कृष्ण-कृष्णेति-वादिनः।
ते हरेर्द्वेषिणः पापाः धर्मार्थं जन्म यद्धरेः ।।२९।।

– जो लोग अपने कर्तव्य छोड़कर, केवल 'कृष्ण-कृष्ण' जपा करते हैं, वे हरि के द्वेषी तथा मूढ़ हैं, क्योंकि प्रभु धर्म या कर्तव्य का मार्ग दिखाने के लिये ही अवतार लेते हैं।

अल्पादपि वस्तूनां संहतिः कार्यसाधिका
तृणैर्गुणत्वम् आपन्नैः बध्यन्ते मत्तदन्तिनः।।३०।।

– छोटी छोटी वस्तुओं की एकता बड़े कार्यों को सिद्ध करती है, जैसे कि घास के तिनकों को जोड़कर बनी हुई रस्सी से मतवाले हाथी तक को बाँधा जा सकता है।

अहो बलवती माया मोहयत्यखिलं जगत्।
पुत्र-मित्र-कलत्रार्थं सर्वदुःखे नियोजति ।।३१।।

– अहो, यह माया अतीव बलशाली है, इसने सारे जग को मोह रखा है। पत्नी, पुत्र, मित्र आदि के माध्यम से यह दुखों में नियोजित करती है।

अगाध-जल-संचारी न गर्वं याति रोहितः।
अङ्गुष्ठ-जल-मात्रेण शफरी फरफरायते।।३२।।

– अगाध जल में विचरनेवाली रोहू मछली कोई दिखावा नहीं करती, परन्तु छोटी-छोटी शफरी नाम की मछलियाँ अंगूठे-भर पानी में भी बड़ा उछल-कूद मचाती हैं।

अभ्यास-सदृशं नैव लोकेऽस्ति हितसाधनम्।
अतः स एव कर्तव्य सर्वदा साधुवर्त्मना।।३३।।

– इस जगत् में 'अभ्यास' के समान हितकर दूसरा कुछ भी नहीं है, अतः भलाई के पथ पर चलनेवालों को सर्वदा 'अभ्यास' में लगे रहना चाहिए।

अद्यैव कुरु यच्छ्रेयो मा त्वां कालोऽत्यगान्महान्।
को हि जानाति कस्याद्य मृत्युकालो भविष्यति ।।३४।

– जो कुछ हितकर है, उसे आज ही कर डालना उचित है, क्योंकि महान् काल सभी का अतिक्रमण करता हुआ चलता है। कौन जाने किसकी आज ही मृत्यु आ जाय।

अपेक्षन्ते न च स्नेहं न पात्रं न दशान्तरम्।
सदा लोकहिता-सक्ता रत्नदीपा इवोत्तमाः ।।३५।।

– उत्तम पुरुष रत्नदीप के समान, न तेल (प्रेम) की अपेक्षा रखते हैं, न पात्र (योग्यता) की, और न सूत्रवर्तिका या उच्च अवस्था की; वे सदा प्रकाश या लोकहित में निरत रहते हैं।

अन्नदानात्परं दानं विद्यादानमतः परम्।
अन्नेन क्षणिका तृप्तिः यावज्जीवं च विद्यया ।।३६।

– अन्नदान सर्वोत्तम दान है, परन्तु उससे भी उत्तम है विद्यादान, क्योंकि अन्न से तो तात्कालिक तृप्ति मिलती है, जबकि विद्या जीवन भर सुख प्रदान करती रहती है।

अहो नु चित्रा मायेयं तथा विश्वविमोहिनी।
असत्यैवापि सद्रूपा मरुभूमिषु वारिवत् ।।३७।।

– अहो, यह माया अत्यन्त विचित्र और सम्पूर्ण जगत् को मोहनेवाली है; यह मरुभूमि में जल के समान असत्य होकर भी सत्य प्रतीत होती है।

❖ **(क्रमशः)** ❖

रामकृष्ण-वन्दना

– १ –

जागो जागो भारतवासी,
विगत निशा अब हुआ विहान ।
सब धर्मों में प्राण जगाने,
आये रामकृष्ण भगवान ।।

ब्रह्मरूप जग के अतीत जो,
विश्व चलाते शक्ति रूप हो,
युग युग में आकर धरती पर,
लीला करते दिव्य ललाम ।।

लोग हुए जड़वादी नास्तिक,
डूबे भोग-रोग में धिक-धिक,
संशय मोह दूर सब होगा,
करके वचनामृत का पान ।।

धर्म सिखाया मूर्तिमन्त हो,
बने प्रेरणा साधु-सुजन को,
त्याग और सेवा सिखलाया,
नर में नारायण का ज्ञान ।।

– २ –

जीवन के देवालय में, तुम प्रगटो चिन्मय भास्वर,
निरखूँ वह रूप तुम्हारा, तेजोमय सुन्दर सुखकर ।।

मम मन मन्दिर प्रांगण में, नित लीला करो मनोहर,
आनन्द दिव्य फैलाओ, दुख दोष विकार मिटाकर ।।

गुणमय काया धारण कर, हो मन वाणी के गोचर,
प्रतिपल समाधि में डूबे, रहना तुम प्रभो निरन्तर ।।

निज भक्तों से आवृत हो, हृदि कमलासन पर बैठो,
तव नाम रूप वाणी का, रसपान करूँ मैं मधुकर ।।

दो अभिनव जीवन मुझको, हे परमपुरुष करुणाकर,
मैं धन्य धन्य हो जाऊँ, तव पूत संग में रहकर ।।

– 'विदेह'

श्रीरामकृष्ण के चरणों में

स्वामी विवेकानन्द

(स्वामीजी ने अपनी आत्मकथा नहीं लिखी, तथापि उनके स्वयं के पत्रों तथा व्याख्यानों और उनके गुरुभाइयों के संस्मरणों में यत्र-तत्र उनके अपने जीवन-विषयक बातें आ गयी हैं। उनकी ऐसी ही उक्तियों का एक संकलन कोलकाता के अद्वैताश्रम द्वारा 'Swami Vivekananda on Himself' शीर्षक के साथ प्रकाशित हुआ है। उसी के आधार पर बँगला के सुप्रसिद्ध साहित्यकार शंकर ने 'आमि विवेकानन्द बलछि' शीर्षक के साथ एक अन्य ग्रन्थ भी प्रकाशित कराया है। हम उपरोक्त दोनों ग्रन्थों तथा कुछ अन्य सामग्री के संयोजन के साथ यह संकलन क्रमशः प्रकाशित कर रहे हैं। इसके द्वारा स्वामीजी के अपने ही शब्दों में उनके जीवन तथा ध्येय का एक प्रेरक विवरण प्राप्त होगा। – सं.)

(गतांक से आगे)

जब मेरे पिताजी का देहान्त हो गया और माँ तथा भाइयों को भोजन तक की कठिनाई हो गयी, तब एक दिन मैं अन्नदा गुहा के साथ उनके पास गया था। उन्होंने उससे कहा, "नरेन्द्र के पिताजी का देहान्त हो गया है, घरवालों को बड़ा कष्ट हो रहा है, इस समय यदि उसके मित्र उसकी सहायता करें, तो बड़ा अच्छा हो।" अन्नदा के चले जाने पर मैं उनसे कुछ रुष्टता से कहने लगा, "क्यों आपने उससे ये बातें कहीं?" यह सुनकर वे रोने लगे थे। बोले, "अरे, मैं तेरे लिए द्वार-द्वार भीख भी माँग सकता हूँ!" अपने प्यार से उन्होंने हम लोगों को वशीभूत कर लिया था।[२९]

(पिता की मृत्यु के बाद) सूतक की समाप्ति के पूर्व से ही मुझे काम की तलाश में घूमना पड़ा था। अनाहार, नंगे पाँव, हाथ में नौकरी का प्रार्थना-पत्र लिये दोपहर की धूप में एक दफ्तर से दूसरे दफ्तर में घूमना पड़ता था। किसी दिन घनिष्ठ मित्रों में से कोई-कोई मेरे दुख से दुखी होकर साथ रहता था और किसी दिन मुझे अकेले ही घूमना पड़ता था, पर सर्वत्र ही विफलता मिलती थी। यह प्रथम अवसर था, जब मुझे संसार के साथ विशेष रूप से परिचित होना पड़ा था। स्वार्थरहित सहानुभूति यहाँ बहुत ही विरल है। यहाँ दुर्बल और दुखी के लिये कोई स्थान नहीं। मैं देखता, दो दिन पहले जो लोग मेरी जरा-सी भी सहायता करने का मौका पाकर अपने को धन्य मानते थे, अब मुझे देखते ही मुँह फेर लेते थे। सामर्थ्य रहते हुए भी मेरी थोड़ी भी सहायता नहीं करना चाहते थे। देख-सुनकर कभी-कभी ऐसा लगता मानो यह संसार दानवों का बनाया हुआ है। स्मरण है, इन्हीं दिनों एक दिन धूप में घूमते हुए मेरे पाँव के तलवे में छाला पड़ गया था और मैं बहुत थका हुआ मैदान के मीनार की छाया में बैठ गया था। सम्भवतः दो-एक मित्र उस दिन साथ थे या फिर संयोगवश वहाँ मिल गये थे। उनमें से एक ने मुझे सान्त्वना देने के लिए गाया था – **बहिछे कृपाघन ब्रह्म-निःश्वास पवने** (भावार्थ – ब्रह्म का निःश्वास कृपा-वायु के रूप में प्रवाहित हो रहा है) आदि।

इस भजन को सुनकर मुझे ऐसा लगा मानो कोई मेरे सिर पर जोरों से आघात कर रहा हो। माता और भाइयों की असहाय अवस्था की बात मन में उदित होने पर मैं दुख, निराशा व ग्लानि के साथ बोल उठा था, "ठहर, ठहर, चुप भी रह! जिनके दुखी परिजनों को भूख की ज्वाला से कष्ट नहीं सहना पड़ता, जिन्हें कभी अन्न-वस्त्र का अभाव नहीं सताता, उन्हें – पंखे ही हवा खाते हुए वैसी कल्पना सुखकर प्रतीत हो भी सकती है, एक दिन मुझे भी होती थी, परन्तु अब कठोर सत्य के सामने वह विकृत परिहास जैसा लगता है।"

मेरी उस बात से सम्भवतः मेरे मित्र को कुछ दुख हुआ होगा, परन्तु निर्धनता से पिस जाने के कारण उस दिन मेरे मुख से वह बात निकल पड़ी थी। उसे वह कैसे समझता? प्रातःकाल उठकर, गुप्त रूप से पता लगाकर जिस दिन मैं जान लेता कि घर में सब के लिए पर्याप्त खाना नहीं है और हाथ में पैसे भी नहीं हैं, उस दिन माँ से 'मुझे निमंत्रण है' – कहकर मैं बाहर निकल जाता था और किसी दिन थोड़ा-बहुत खाकर और किसी दिन वैसे ही रहकर बिता देता। स्वाभिमान के कारण मैं इस बात को किसी से कह भी नहीं सकता था। धनी मित्रों में कोई-कोई पहले की तरह मुझे अपने घर या बगीचे में ले जाकर संगीत आदि के द्वारा उनका आनन्दवर्धन करने का अनुरोध करते थे। लाचार होकर कभी-कभी मैं उनके साथ जाकर उनका मनोरंजन करने में प्रवृत्त होता था, किन्तु मन की बात उनसे कहने की इच्छा नहीं होती थी। वे भी स्वतःप्रवृत्त हो उस विषय को जानने की चेष्टा नहीं करते थे। उनमें कदाचित् कभी कोई कह देता था, "तुझे आज बहुत ही उदास और दुर्बल क्यों देखता हूँ, बता तो?" केवल एक मित्र ने मेरे अनजाने ही दूसरे से हमारी आर्थिक स्थिति की बात जानकर गुमनाम पत्र द्वारा मेरी माता को बीच-बीच में रुपये भेजकर मुझे चिर ऋणी बना लिया था।

यौवन में जो बाल्यबन्धु चरित्रहीन होकर गलत उपायों से धन कमा रहे थे, उनमें से कोई-कोई मेरी निर्धनता का हाल जानकर मुझे अपने दल में खींचने की चेष्टा कर रहे थे। उनमें से जो लोग इसके पहले मेरी तरह सहसा हालत बिगड़ जाने के कारण हीन वृत्ति अपनाने को बाध्य हुए थे, मैंने देखा कि वे ही लोग मेरे लिये यथार्थ में दुखी हुए थे। अविद्या-रूपिणी महामाया ने भी, अवसर पाकर मेरे पीछे पड़ने में कसर नहीं की। पहले से ही एक धनी महिला की दृष्टि मेरे ऊपर पड़ चुकी थी। इसी मौके पर उसने प्रस्ताव भेजा कि मैं चाहूँ तो उसकी सम्पत्ति के साथ उसे अपनाकर अपने दुख-क्लेश को दूर कर सकता हूँ। तीव्र अवज्ञा और कठोरता दिखाकर मैंने उस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया था। जब एक दूसरी महिला मुझे लालच दिखाने आयी, तो मैंने कहा था, "देखो बच्ची, इस मिट्टी के शरीर के सुख के लिए तुमने अब तक न जाने क्या-क्या किया है ! अब तो मृत्यु सामने है – उस पार जाने का क्या कुछ सम्बल भी संग्रह किया है? हीन बुद्धि छोड़कर भगवान को पुकारो।"

कुछ भी हो, इतने दुख-कष्ट से भी आस्तिक्य-बुद्धि का लोप या ईश्वर मंगलमय हैं – इस बात पर सन्देह नहीं आया। सुबह नींद खुलते ही मैं उनका स्मरण करते हुए तथा उनका नाम लेते हुए बिस्तर छोड़ता था और हृदय में आशा लेकर धनोपार्जन के उपाय खोजने के लिए भटकता फिरता था। एक दिन इसी प्रकार बिस्तर से उठ रहा था, तभी बगल के कमरे से माँ ने सुनकर कहा, "चुप भी रह, बचपन से ही तो भगवान-भगवान करता है। उसी भगवान ने तो यह सब किया !" उनकी बात से हृदय में बड़ी चोट लगी। मैं दुखी चित्त से सोचने लगा – "क्या सचमुच ही भगवान् हैं? और हों भी, तो क्या मनुष्य की करुण प्रार्थना सुनते हैं? परन्तु मैं जो इतनी प्रार्थनाएँ करता हूँ, उनका कोई उत्तर क्यों नहीं मिलता? शिव के संसार में इतना अ-शिव कहाँ से आया? मंगलमय के राज्य में इतना अमंगल क्यों?" दूसरों के दुख से कातर होकर ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने एक बार कहा था, "यदि भगवान दयामय और मंगलमय हैं, तो दुर्भिक्ष के समय लाखों आदमी बिना अन्न के क्यों मर जाते हैं?" इसी बात की प्रतिध्वनि मेरे कानों में गूँजने लगी। मेरा चित्त ईश्वर के प्रति प्रचण्ड विद्वेष से परिपूर्ण हो गया और सन्देह ने मौका पाकर मेरे हृदय पर अधिकार जमा लिया।

छिपाकर कोई काम करना मेरे स्वभाव के विरुद्ध था। बचपन से कभी मैंने वैसा नहीं किया और न कभी भय या अन्य किसी कारण से अपने मन का कोई विचार छिपाया है। अत: यह भावना आयी कि ईश्वर नहीं हैं, अथवा यदि हों भी तो उन्हें पुकारने की कोई आवश्यकता नहीं, क्योंकि इससे किसी फल की प्राप्ति नहीं होती – यह बात मैं लोगों के सामने युक्ति के द्वारा प्रमाणित करने की चेष्टा करने लगा, तो इसमें आश्चर्य की क्या बात ! इसके फलस्वरूप लोग कहने लगे कि मैं नास्तिक हो गया हूँ और दुष्ट लोगों के साथ मिलकर मदिरापान आदि दुराचरण भी करने लगा हूँ। इस वृथा निन्दा से मेरा निर्मल अन्त:करण कठोर हो उठा और किसी के बिना पूछे भी मैं लोगों से कहता फिरता कि यदि कोई अपने दुख-कष्टों को कुछ समय तक भूल जाने के लिए मदिरा पीता है या दिल बहलाने के लिए वेश्यालय में जाता है, तो मैं उसमें कोई बुराई नहीं मानता और यदि वैसे उपायों को अपनाने से मैं भी अपने दुख-कष्टों को भूल सकूँगा – यह बात जिस दिन मेरी समझ में आ जायेगी, उस दिन से मैं भी वैसे काम करने से पीछे नहीं हटूँगा।

बातें कानों-कान फैलती हैं। मेरी इस बात को, विविध प्रकार से विकृत होकर दक्षिणेश्वर में ठाकुर के पास और कलकत्ते के उनके भक्तों के पास पहुँचने में विलम्ब नहीं लगा। कोई-कोई मेरा हालचाल जानने के लिए मुझसे मिलने आये और इस बात को वे इशारे से व्यक्त कर गये कि मेरे विषय में जो निन्दा फैली है, वह पूर्णतया सही न होने पर भी, उसमें से कुछ अंशों पर उनका विश्वास है। मुझे वे लोग इतना हीन समझते हैं – यह जानकर मैं भी अहंकार से फूलकर – इस बात को प्रमाणित करने के लिए कि दण्ड पाने के भय से ईश्वर पर विश्वास करना अत्यन्त दुर्बलता का लक्षण है – ह्यूम, बेन, मिल, कॉमटे आदि पाश्चात्य दार्शनिकों के मतों को उद्धृत करने लगा और ईश्वर के अस्तित्व का कोई प्रमाण नहीं है, यह दिखाने के लिए उनके साथ प्रचण्ड युक्ति-तर्कों की प्रस्तुति में लग जाता था। वे लोग इस बात पर विश्वास करके चले गये कि मैं पतित हो गया हूँ – यह जानकर मुझे प्रसन्नता ही हुई और मैंने सोचा कि श्रीरामकृष्ण भी उनके मुख से सुनकर इस पर विश्वास कर लेंगे। परन्तु ऐसी चिन्ता मन में उठने से मैं फिर हताश हो गया। निश्चय किया – वे जो भी चाहें, मानें – जब मनुष्यों के मत-अमत का मूल्य ही तुच्छ है, तो इसमें मेरी क्या हानि है? परन्तु बाद में यह सुनकर मैं स्तम्भित हो गया कि ठाकुर ने उन बातों को सुनकर पहले तो कुछ नहीं कहा। किन्तु बाद में जब भवनाथ ने रोते हुए उनसे कहा, "महाराज, नरेन्द्र की ऐसी दुर्गति होगी, यह तो स्वप्न में भी नहीं सोचा था", तो उस समय ठाकुर ने उत्तेजित होकर कहा था, "चुप रह मूर्ख, माँ ने कहा है कि वह कभी वैसा नहीं हो सकता। यदि फिर कभी मुझसे ऐसी बात कही, तो तेरा मुँह नहीं देख सकूँगा।"

इस प्रकार अहंकार के द्वारा नास्तिकता के पोषण से क्या होता? दूसरे ही क्षण – बचपन से ही, विशेषकर श्रीरामकृष्ण के साथ भेंट होने के बाद मेरे जीवन में जो अद्‌भुत अनुभूतियाँ प्रगट हुई थीं, वे सब जिस समय हृदय में उज्ज्वल अक्षरों में

उदित होती थीं, तब मैं सोचने लगता – ईश्वर अवश्य ही हैं और उन्हें प्राप्त करने का पथ भी अवश्य है, नहीं तो इस संसार में जीवित रहने का कोई प्रयोजन ही नहीं। जीवन में चाहे कितने भी दुख-कष्ट क्यों न आयें, उस पथ को ढूँढ़ निकालना होगा। इसी तरह दिन-पर-दिन बीतने लगे और मेरा चित्त निरन्तर सन्देह से डाँवाडोल होकर अशान्त हो रहा था। संसार के अभावों में भी कमी नहीं आयी थी।

गर्मी के बाद वर्षा आयी। अब भी मैं पहले की ही भाँति काम की खोज में भटक रहा था। एक दिन मैं भूखा था, फिर पानी में भीगकर रात के समय बहुत ही थक गया था और उससे भी अधिक मेरा मन थका हुआ था। इसी अवस्था में मैं घर लौट रहा था, परन्तु इतना थका हुआ था कि मेरे लिए एक कदम भी आगे बढ़ना असम्भव हो गया और मैं एक निर्जीव वस्तु के समान पासवाले एक मकान के चबूतरे पर लेट गया। कुछ समय तक चेतना का पूर्ण रूप से लोप हुआ था या नहीं – मैं कह नहीं सकता। परन्तु इतना स्मरण है कि मन में रंग-बिरंगे चित्रों तथा विचारों का उदय तथा लय होता जा रहा था। उन्हें हटाकर किसी एक विशेष विचार में मन को आबद्ध रखने की सामर्थ्य भी उस समय मुझमें नहीं थी। तभी सहसा ऐसा प्रतीत हुआ मानो किसी दैवी शक्ति के प्रभाव से, एक-के-बाद-एक भीतर के परदे उठते जा रहे हैं और 'शिव के संसार में अ-शिव क्यों' और 'ईश्वर की कठोर न्यायपरता के साथ अपार करुणा कैसे' आदि जिन विषयों का मैं अब तक समाधान नहीं कर सका था, मन जिनके कारण अब तक सन्देह से व्याकुल था, अन्तर के गहन प्रदेश में उन विषयों की निश्चित मीमांसा दिखायी पड़ने लगी। मैं आनन्द में उत्फुल्ल हो उठा। उसके बाद घर लौटते समय देखा कि शरीर में जरा भी थकावट नहीं है, मन असीम बल और शान्ति से पूर्ण हो गया है, रात थोड़ी ही बची है।

तब से मैं संसार की प्रशंसा और निन्दा से बिल्कुल ही उदासीन हो गया और इस बात पर दृढ़ विश्वास स्थापित करके कि साधारण मनुष्यों की तरह धनोपार्जन करके परिवार-पोषण और सुखभोग में समय बिताने के लिए मेरा जन्म नहीं हुआ है, मैं अपने पितामह की भाँति गृहत्याग करने के लिए तैयार होने लगा। जाने का दिन भी निश्चित हो गया। सूचना मिली कि ठाकुर उस दिन एक भक्त के मकान पर आ रहे हैं। मैंने सोचा – अच्छा ही हुआ, गुरुदर्शन करके सदा के लिए घर छोड़कर चला जाऊँगा। ठाकुर से भेंट होते ही वे बोले, "आज तुम्हें मेरे साथ दक्षिणेश्वर चलना होगा।" मैंने बहुत-बहाने किये, परन्तु उन्होंने नहीं छोड़ा। लाचार होकर मैं उनके साथ चला। गाड़ी में उनसे विशेष बातें नहीं हुईं। दक्षिणेश्वर पहुँचकर मैं दूसरों के साथ कमरे में बैठा था। इतने में ठाकुर को भावावेश हुआ, देखते-ही-देखते वे सहसा मेरे पास आये और प्रेम से मुझे पकड़कर आँसू बहाते हुए गाने लगे –

कथा कहिते डराई, ना कहितेओ डराई,
आमार मने सन्द हय बुझि तोमाय हाराई, हा-राई!

(भावार्थ – बात कहने में डरता हूँ, न कहने में भी डरता हूँ, मेरे मन में सन्देह होता है कि कहीं मैं तुम्हें खो न बैठूँ!)

अब तक मैंने अपने अन्तर की प्रबल भावराशि को रोक रखा था। परन्तु अब मैं उसका वेग नहीं सँभाल सका – श्रीरामकृष्ण की ही भाँति मेरे भी नेत्रों से आँसुओं की धारा बह निकलीं। मैं निश्चित रूप से समझ गया कि श्रीरामकृष्ण सब कुछ जान गये हैं। हमारे इस प्रकार के आचरण से दूसरे लोग अवाक् रह गये। सामान्य अवस्था में आने पर किसी-किसी ने श्रीरामकृष्ण के उनके उस प्रकार के आचरण का कारण पूछा। उन्होंने हँसते हुए कहा, "हम दोनों के बीच वैसे ही कुछ हो गया।" बाद में सब लोगों के चले जाने पर उन्होंने मुझे पास बुलाकर कहा, "जानता हूँ, तू माँ के काम के लिए संसार में आया है, तू संसार में कभी नहीं रहेगा, परन्तु जब तक मैं हूँ, तब तक मेरे लिए रह" – इतना कहकर वे हृदय के आवेग से पुन: अश्रुपात् करने लगे।

अगले दिन मैं श्रीरामकृष्ण से विदा लेकर घर लौट आया। और इसके साथ ही गृहस्थी की सैकड़ों चिन्ताओं ने आकर मेरे चित्त को आच्छन्न कर लिया। मैं फिर पहले की तरह धनोपार्जन की चेष्टा में घर से निकल पड़ा। एक एटार्नी के दफ्तर में कुछ काम करके और कुछ पुस्तकों के अनुवाद से जो थोड़ा-सा धन प्राप्त हुआ, उसी से किसी तरह दिन बीतने लगे, परन्तु कोई स्थायी कार्य नहीं मिला। इस कारण माता और भाइयों के पालन-पोषण का कोई ठोस प्रबन्ध नहीं हो सका। कुछ दिनों बाद मन में आया कि ईश्वर श्रीरामकृष्ण की बात सुनते हैं – उन्हें अनुरोधपूर्वक ऐसी प्रार्थना करूँगा, जिससे मेरी माता और भाइयों के खाने-पहनने का कष्ट दूर हो जाय। मुझे वे 'न' नहीं कहेंगे। मैं दक्षिणेश्वर पहुँचा और श्रीरामकृष्ण के चरण पकड़कर हठपूर्वक बोला, "मेरे माँ-भाइयों का कष्ट दूर करने के लिए आपको जगदम्बा से प्रार्थना करनी ही होगी।" ठाकुर ने उत्तर दिया, "मैं ऐसी बातें माँ से नहीं कह सकता। तू स्वयं क्यों नहीं कहता? तू तो माँ को मानता नहीं, इसीलिए तुझे इतना कष्ट है।" मैंने कहा, "मैं माँ को नहीं जानता, आप ही मेरे लिए माँ से कहिये। आपको कहना ही पड़ेगा, मैं आपको नहीं छोड़ूँगा।" श्रीरामकृष्ण ने स्नेहपूर्वक कहा, "अरे, मैंने तो कितनी ही बार कहा है – माँ, नरेन्द्र का दु:ख-कष्ट दूर कर दो। परन्तु तू माँ को नहीं मानता, इसलिए माँ नहीं सुनतीं। अच्छा, आज मंगलवार है, मैं कहता हूँ, आज रात काली-मन्दिर में जाकर माँ को प्रणाम करके तू जो कुछ माँगेगा, माँ तुझे वही प्रदान करेंगी। मेरी माँ चिन्मयी ब्रह्मशक्ति हैं, उन्होंने अपनी इच्छा से इस संसार

का प्रसव किया है। वे चाहें तो क्या नहीं कर सकतीं?''

अब मुझे दृढ़ विश्वास हुआ – जब ठाकुर ने ऐसा कहा है, तो अवश्य ही प्रार्थना करते ही दुख का अवसान होगा। मैं प्रबल उत्कण्ठा के साथ रात की प्रतीक्षा करने लगा। रात आयी। एक प्रहर बीत जाने के बाद ठाकुर ने मुझे मन्दिर में जाने को कहा। मन्दिर में जाते हुए नशे की तरह भाव होने लगा, पैर लड़खड़ाने लगे और – मैं माँ को सचमुच देख सकूँगा और उनके श्रीमुख की वाणी सुन सकूँगा – इस प्रकार के स्थिर विश्वास से मन अन्य विषयों को भूलकर एकाग्र और तन्मय होकर उसी बात को सोचने लगा। मन्दिर में उपस्थित होकर देखा – सचमुच ही माँ चिन्मयी, सचमुच ही जीवन्त प्रतिमा और अनन्त प्रेम तथा सौन्दर्य की आधार-रूपिणी हैं। भक्ति और प्रेम से हृदय उछलने लगा। मैं विह्वल होकर बारम्बार प्रणाम करते हुए कहने लगा, ''माँ, मुझे विवेक दो, वैराग्य दो, ज्ञान दो, भक्ति दो; ऐसा कर दो, जिससे मैं नित्य अबाध रूप से तुम्हारा दर्शन प्राप्त कर सकूँ।'' मेरा हृदय शान्ति से प्लावित हो गया। संसार-प्रपंच का पूरी तौर से विलोप हो गया और केवल माँ ही मेरे हृदय को आलोकित करती हुई विराजमान रहीं।

लौटकर ठाकुर के पास आते ही उन्होंने पूछा, ''क्यों रे, माँ से गृहस्थी का अभाव दूर करने की प्रार्थना की न?'' उनके प्रश्न पर चौंककर मैंने उत्तर दिया, ''नहीं महाराज, मैं तो भूल ही गया था, अब क्या करूँ?'' उन्होंने कहा, ''जा-जा, फिर जाकर प्रार्थना कर आ।'' मैं पुनः मन्दिर की ओर चला और माँ के सामने उपस्थित होकर पुनः मुग्ध हो गया और सब कुछ भूलकर बारम्बार प्रणाम करते हुए ज्ञान तथा भक्ति के लिए प्रार्थना करके लौट आया। हँसते हुए ठाकुर ने पूछा, ''क्यों रे, अबकी बार तो कह आया न?'' मैं फिर चौंक उठा और बोला, ''नहीं महाराज, माँ को देखते ही एक दैवी शक्ति के प्रभाव से सब बातें भूलकर केवल ज्ञान-भक्ति पाने की बात ही कही है। अब क्या होगा?'' ठाकुर ने कहा, ''यह क्या रे, अपने को सँभालकर वैसी प्रार्थना क्यों नहीं कर सका? हो सके तो एक बार और जाकर वे बातें कह आ। जल्दी जा।'' मैं फिर चला, परन्तु मन्दिर में प्रवेश करते ही लज्जा ने हृदय को व्याप्त कर लिया। मैंने सोचा – मैं जगदम्बा को यह कैसी तुच्छ बात कहने आया हूँ! ठाकुर कहते हैं – ''राजा को प्रसन्न करके उनसे कद्दू-कुम्हड़ा माँगना'' – यह भी वैसी ही मूर्खता की बात है। मेरी भी ऐसी ही हीन बुद्धि हुई है। लज्जा से प्रणाम करते हुए मैं पुनः बोला, ''मैं और कुछ नहीं माँगता माँ, केवल ज्ञान और भक्ति दो।'' मन्दिर के बाहर आकर मन में ऐसा भाव आया कि यह निश्चय ही ठाकुर की लीला है, नहीं तो मैं तीन-तीन बार जगदम्बा के पास आकर भी उनसे कुछ नहीं कह सका। इसके बाद मैंने उनके चरण पकड़कर कहा, ''आपने ही मुझे भुलवा दिया था। अब आप ही को कहना होगा, ताकि मेरे परिजनों को अन्न-वस्त्र का कष्ट न हो।'' उन्होंने कहा, ''अरे, मैं तो वैसी प्रार्थना किसी के लिए कभी नहीं कर सका। मेरे मुख से तो वैसी बातें निकलती ही नहीं हैं, तुझे कह दिया कि तू माँ से जो कुछ माँगेगा, वही पायेगा। तू माँग ही नहीं सका, तेरे भाग्य में संसार-सुख नहीं है, तो मैं क्या करूँ?'' मैंने कहा ''ऐसा नहीं हो सकता महाराज, आपको मेरे लिए वह बात कहनी पड़ेगी। मेरा दृढ़ विश्वास है कि आपके कहने मात्र से उन लोगों के सारे अभावों की पूर्ति हो जायेगी।'' इस प्रकार जब मैंने उन्हें भी किसी तरह नहीं छोड़ा, तब वे बोले, ''अच्छा जा, उनको मोटे अन्न-वस्त्र का अभाव नहीं रहेगा।''[३०]

मेरे लिए माँ काली से उन्होंने न जाने कितनी बातें कहीं। जब मुझे खाने को नहीं मिल रहा था, पिताजी का देहान्त हो गया था – घरवाले बड़े कष्ट में थे, तब उन्होंने मेरे लिए माँ काली से रुपयों की प्रार्थना की थी। ... रुपये नहीं मिले। उन्होंने कहा, ''माँ ने कहा है, मोटा कपड़ा और रूखा-सूखा भोजन मिल सकता है, रोटी-दाल मिल सकती है।''

मुझे इतना प्यार तो करते थे, पर जब मुझमें कोई अपवित्र भाव आता, तो वे उसे तुरन्त ताड़ जाते थे। जब मैं अन्नदा के साथ घूमता था – कभी कभी बुरे आदमियों के साथ पड़ जाता था – और तब यदि मैं उनके पास आता, तो वे मेरे हाथ का कुछ नहीं खाते थे। मुझे स्मरण है, एक बार उनका हाथ कुछ उठा था, परन्तु फिर आगे नहीं बढ़ा। उनकी बीमारी के समय एक दिन ऐसा होने पर उनका हाथ मुँह तक गया और फिर रुक गया। उन्होंने कहा, ''अब भी तेरा समय नहीं आया है।''[३१]

एकमात्र श्रीरामकृष्ण ही प्रथम दिन की भेंट से ही सर्वदा समान भाव से मेरे ऊपर विश्वास करते आये हैं, अन्य कोई नहीं – अपने माँ-भाई भी नहीं। उनके इस प्रकार के विश्वास और प्यार ने ही मुझे जन्म भर के लिए बाँध लिया है। केवल वे ही प्यार करना जानते हैं और कर सकते हैं – संसार के दूसरे लोग तो केवल अपने स्वार्थ-साधन के निमित्त प्यार का बहाना मात्र करते हैं।[३२]

❖ (क्रमशः) ❖

सन्दर्भ-सूची –

२९. श्रीरामकृष्ण-वचनामृत, सं. १९९९, खण्ड २, पृ. ९८०; **३०.** श्रीरामकृष्ण-लीलाप्रसंग, सं. २००८, खण्ड २, पृ. ८८६-८९२; **३१.** वचनामृत, खण्ड २, पृ. १२४९-५०; **३२.** लीलाप्रसंग, खण्ड २, पृ. ८९४

साधना, शरणागति और कृपा (२/२)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(निम्नलिखित प्रवचन पण्डितजी द्वारा रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के तत्त्वावधान में ३१ जनवरी से ५ फरवरी १९९४ ई. तक प्रदत्त हुआ था। 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशनार्थ इसे टेप से लिपिबद्ध करने का श्रमसाध्य कार्य किया है श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक श्री राजेन्द्र तिवारी ने। – सं.)

भरतजी भगवान के गुणानुवाद के महानतम रसिक हैं। भगवद्-गुणों में उनकी बड़ी आस्था है। वे जानते हैं कि प्रभु जब सामने होंगे, तो उनका दर्शन होगा और जब कथा सुनेंगे, तो उसमें प्रभु के शील, गुण तथा उनके चरित्र के कितने ही रूप आयेंगे। इसीलिए जब भरद्वाज मुनि ने कहा कि रात को आश्रम में ही विश्राम कीजिए, तो वे प्रसन्न हो गये। सोचा – यहाँ रहेंगे, तो हमारे प्रभु राम की ही चर्चा चलेगी, क्योंकि अभी-अभी तो प्रभु इस आश्रम में विश्राम करके आगे बढ़े हैं। भरतजी स्वीकृति प्रदान करते हुए बोले – आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। आप यह सोचकर अतिथि को रात में ठहरने का आग्रह कर रहे हैं कि ये स्वीकार नहीं करेंगे और यदि वह स्वीकार कर ले, तो चिन्ता हो जाती है कि अब क्या करें? भरद्वाज मुनि संकोच में पड़ गये, क्योंकि जैसा देवता हो, वैसी ही पूजा की भी व्यवस्था होनी चाहिए –

मुनिहि सोच पाहुन बड़ नेवता ।
तसि पूजा चाहिय जस देवता ।। २/२१३/७

मैंने राजकुमार, उनकी सेना और इतने बड़े समाज को आमंत्रित किया है, परन्तु यदि हम इनके सामने कन्द-मूल-फल परोस दें, तो यह उचित सत्कार नहीं होगा, क्योंकि अतिथि राजा है, तो सत्कार भी राजोचित होना चाहिए। भरद्वाज की चिन्ता को देखकर सारी ऋद्धि-सिद्धियाँ उनके सामने हाथ जोड़कर खड़ी हो गईं और बोलीं – महाराज, आप हमें आज्ञा दीजिए, हम क्या सेवा करें –

सुनि रिधि सिधि अनिमादिक आईं ।
आयसु होइ सो करहिं गोसाईं ।। २/२१३/८

ऋषि प्रसन्न हो गये और उन्होंने बड़ी मीठी बात कही, बोले – आज तक तो यही माना जाता रहा है कि तुम ईश्वर के मार्ग में बाधक बनती हो। ऋद्धि-सिद्धियाँ साधक के मार्ग में बाधक बनकर उसे पथभ्रष्ट कर देती हैं, विचलित कर देती हैं, परन्तु आज तुम्हें बड़ा सौभाग्य मिला है। – क्या? बोले – इनके मार्ग में ऋद्धि-सिद्धियाँ बाधक बन नहीं सकती। अब तुम इनकी ऐसी सेवा करो कि सबका श्रम दूर हो जाय –

पहुनाई करि हरहु श्रम कहा मुदित मुनिराज ।। २/२१३

गोस्वामीजी लिखते हैं – मुनिश्रेष्ठ ने अपने तपोबल से ब्रह्मा को भी चकित कर देनेवाला वैभव रच दिया –

बिधि बिसमय दायकु बिभव
मुनिबर तपबल कीन्ह ।। २/२१४

समस्त प्रकार की भोग-सामग्री, कोई ऐसी सामग्री नहीं थी, जो उस आश्रम में चारों ओर भरद्वाज के तपोबल से ऋद्धि-सिद्धियों के द्वारा निर्मित न कर दी गई हों। यह एक अनोखा पक्ष है, प्रश्न यह है कि इतने बड़े चमत्कार, इतनी बड़ी सिद्धियों को जब भरतजी ने देखा, तो उन पर क्या प्रभाव पड़ा? भरतजी गद्‌गद हो गये। आनन्द में डूब गये।

मुनि प्रभाउ जब भरत बिलोका ।
सब लघु लगे लोकपति लोका ।। २/२१५/१

यदि कोई भरतजी से कहता – भरद्वाज मुनि ने इतनी बड़ी मात्रा में भोग-सामग्री प्रगट करके कितना अच्छा कार्य किया! तो भरतजी कहते – महर्षि यदि भोग-सामग्री को बहुत अच्छा मानते, तो वे स्वयं भी भोगते। स्वयं कुटिया में रहते हैं, स्वयं इन ऋद्धि-सिद्धि को स्वीकार ही नहीं करते। इन्हें तपस्या में ही अधिक सुख मिलता होगा, तभी तो ये इन सुखों को स्वीकार नहीं करते। अत: भोग-सुखों की अपेक्षा तपस्या का सुख ही श्रेष्ठ है। यहाँ अर्थ लेनेवाले व्यक्ति की मनोवृत्ति ही महत्त्वपूर्ण है। **बुद्धिमत्ता की इसी में परीक्षा है कि व्यक्ति वस्तुओं को किस दृष्टि से देखता है।**

सनातन गोस्वामी के सन्दर्भ में बड़ी प्रसिद्ध कथा है। वृन्दावन का एक व्यक्ति अभाव से इतना पीड़ित था कि उसने सोचा कि आत्महत्या कर लें। वह यमुनाजी में कूदने जा रहा था। गोस्वामीजी वहीं यमुना किनारे वृक्ष के नीचे रहा करते थे। दोपहर के समय गाँव में जाकर भिक्षा लाते और रोटी के टुकड़े खाकर पानी पी लेते। वे इसी तरह रहा करते थे। उन्होंने देखा – गाँव का एक व्यक्ति यमुना में डूबने जा रहा है। उन्होंने दौड़कर हाथ पकड़ लिया। बोले – क्या कर रहे हो? उसने कहा – महाराज, मैं इतना निर्धन हूँ कि अपना और परिवार का भी पालन-पोषण नहीं कर पाता। मेरा जीवन ही अभिशाप हो गया है। अब इसे रखकर मैं क्या करूँगा। उन्होंने कहा – नहीं नहीं, तुम आत्महत्या मत करो। मैं तुम्हें दरिद्रता मिटाने का उपाय बताता हूँ। – क्या? बोले – मैं

तुम्हें पारस पत्थर दे दूँगा। उस व्यक्ति को बड़ा ही आश्चर्य हुआ – स्वयं तो लंगोटी लगाए हुए हैं और कह रहे हैं, पारस पत्थर दे दूँगा। सोचा – ठीक है, जब कह रहे हैं, तो देख ही लिया जाय। बोला – महाराज, मुझे तो कहीं कोई पारस पत्थर दिखाई नहीं देता। कहाँ है वह? गोस्वामीजी ने दिखाया – कूड़े-करकट के पास एक छोटा-सा पत्थर पड़ा हुआ था। वह तो और भी हैरान रह गया – क्या कोई पारस को कूड़े में फेंकेगा? लेकिन कह रहे हैं, पारस है ! गोस्वामीजी उनकी शंका को ताड़कर बोले – देख लो। उसने उठाकर लोहे के टुकड़े से छुलाया, तो वह सोने का हो गया।

उसके आनन्द की सीमा नहीं रही। सचमुच पारस मिल गया। आनन्द में नाचने लगा। इसके बाद वह पारस को लेकर जाने लगा। परन्तु उसके अन्त:करण में कहीं-न-कहीं सत्संग के संस्कार थे। वह जाते हुए सोचने लगा – जिस पारस को पाकर मैं इतना पागल हो रहा हूँ, उस पारस को जिसने कूड़े में फेंक रखा था, उसके पास तो न जाने क्या होगा कि जिसे पाने के बाद उसे पारस ही कूड़ा लगने लगा।

वह लौट आया। बोला – महाराज, वह कौन-सी वस्तु है, जिसे पाने के बाद आपने पारस को कूड़े में फेंक दिया? गोस्वामीजी बोले – भाई, इस पारस को पाने के लिए यदि तुम उस पारस को नहीं लेना चाहते, तो पहले उसे नदी में फेंक आओ, तब इस पारस की चर्चा करें। उन्होंने उसको भगवान की परम भक्ति का उपदेश देकर धन्य बना दिया।

यदि व्यक्ति स्वयं तो निरपेक्ष (विरागी) न हो, परन्तु दूसरों को विरागी बनाना चाहे, तो यह एक रोग है और अत्यन्त व्यापक रोग है। फिर एक व्यक्ति स्वयं विरागी हो और दूसरों को भी विरागी बनाना चाहे, तो यह एक अन्य पक्ष है। परन्तु जो स्वयं विरागी होकर भी दूसरे की दुर्बलता को हेय दृष्टि से नहीं देखता, यह महानतम गुण रामायण के पात्रों में मिलेगा।

आप हनुमानजी और सुग्रीव के चरित्रों की तुलना कीजिए। हनुमानजी ब्रह्मचारी, विरागी, त्यागी – सकल गुण निधान ! दूसरी ओर सुग्रीव में उतनी ही दुर्बलताएँ, उतनी ही कमियाँ, परन्तु कितने आश्चर्य की बात है कि हनुमानजी ने सुग्रीव को, न केवल भगवान से मिलाया, अपितु वे उन्हें सदा-सर्वत्र सम्मान देते रहे। हनुमानजी ने उनकी इतनी सेवा की, इतना कुछ किया कि वे उनके ऋण से उऋण नहीं हो सकते। पर उनमें कितनी विनम्रता है? सभी बन्दर श्रीराम के राज्याभिषेक में सम्मिलित हुए और जब बन्दरों को विदा किया जाने लगा, तो हनुमानजी ने सुग्रीव से अयोध्या में रहने की आज्ञा माँगी। – कैसे माँगी? पढ़कर आश्चर्य होता है। लिखा है – वे सुग्रीव के चरणों में गिर पड़े और बहुत प्रकार से उनकी स्तुति की, विनती की और बड़े विनम्र शब्दों में सुग्रीव से बोले – आप मुझे आज्ञा दीजिये – दस दिनों तक प्रभु के चरणों की सेवा करने के बाद मैं आपके चरणों को देखूँगा –

तब सुग्रीव चरन गही नाना ।
भाँति विनय किन्हें हनुमाना ।।
दिन दस करि रघुपति पद सेवा ।
पुनि तव चरन देखिहऊँ देवा ।। ७/१९/७-८

वे श्रीराम के चरणों में गिरते, तो आश्चर्य नहीं था। पर विषयी सुग्रीव जैसे व्यक्ति के चरणों में, न केवल गिर पड़े, अपितु बड़ी स्तुति तथा प्रार्थना की और दस दिनों के लिये प्रभु की सेवा की आज्ञा माँगी। उस समय हनुमानजी की आँखों में आँसू आ जाते हैं। जो इतने बड़े विरागी, ब्रह्मचारी तथा इतने गुणों से सम्पन्न हैं, जिन्होंने सुग्रीव की इतनी सेवा की, रक्षा की, वे आज भी उनके चरणों में गिरे हुए हैं।

यह कोई सुग्रीव की महानता नहीं है। उनके चरित्र में तो दुर्बलताएँ ही भरी पड़ी हैं। किसी ने हनुमानजी से पूछा – यह वही सुग्रीव है न, जिसने राज्य पाकर भगवान को भुला दिया था। आप उसके चरणों में गिरते हैं? हनुमानजी ने उत्तर दिया – बस, उसी से तो पता चला। – क्या? बोले – मुझे यही पता था कि हमारे प्रभु बड़े भूलने वाले स्वभाव के हैं। भक्तों ने इसी रूप में भगवान का वर्णन किया है। गोस्वामीजी ने विनय-पत्रिका में किशोरीजी से कहा है कि आप प्रभु को मेरी याद दिला दीजिएगा। किशोरीजी ने पूछा – क्या उन्हें याद दिलाना पड़ता है? – हाँ। – क्यों? – वे इतने अमानी और दूसरों को सम्मान देनेवाले हैं कि भूल जाते हैं –

कबहूँ समय सुधि द्यायबी, मेरी मातु जानकी ।।
बानि बिसारनसील है, मानद अमान की ।। वि.४२

भूलने में भी, भिन्न-भिन्न लोगों का भिन्न-भिन्न स्वभाव होता है। कुछ लोगों को कई बातें बहुत याद रहती हैं, अत्यधिक याद रहती हैं और कुछ बातें बिल्कुल भी याद नहीं रहतीं। माँ ने तुलसीदास से पूछ दिया – क्या-क्या भूल जाते हैं? बोले – चार चीजें भूल जाते हैं। – क्या, क्या? बोले – यदि उन्होंने कभी किसी का हित किया है, तो वह उन्हें याद नहीं रहता – **निज कृत हित**। – और क्या भूल जाते हैं? बोले – यदि किसी ने शत्रुता से अहित किया है, तो उसे भी भूल जाते हैं – **अरिकृत अनहित**। – तीसरा क्या भूल जाते हैं? बोले – **दास दोष** – सेवक में अगर कोई दोष आ जाय तो उस दोष को भूल जाते हैं। और बोले – जो दान दिया है, उसे भी भूल जाते हैं – **न सुरति चित रहत किए दान की**।

ये चारों भूल जाते हैं – शत्रु का किया गया अहित और अपना किया हुआ हित याद नहीं। भक्तों ने बार-बार यही कहा है कि प्रभु बड़े भुलक्कड़ हैं, कुछ याद नहीं रहता; और इसीलिए गोस्वामीजी विनय-पत्रिका (४१) में किशोरीजी से प्रार्थना करते हैं कि आप ही उनकी विस्मृति को स्मृति में बदल दीजियेगा – भूल गये हों, तो याद दिला दीजियेगा –

कबहुँक अम्ब अवसर पाइ ।
मेरिऔ सुधि द्याइबी, कछु करुन-कथा चलाइ ।।

किशोरीजी से प्रार्थना करते हैं – मेरी सुधि दिलाइए। शब्द बड़े ही सांकेतिक हैं – याद न रखने वाले ईश्वर को मानो भक्ति देवी ही याद दिलाती हैं। ईश्वर याद नहीं रखते – यह बात हम केवल व्यावहारिक विनोद में ही कहें, तो बड़ा अच्छा है, क्योंकि हम लोग तो थोड़े लोगों की शत्रुता-मित्रता को याद रखते हैं और दिन रात पचड़े में पड़े रहते हैं। परन्तु यदि वे इतने जीवों की सारी करनी को याद रखने लगें, तो उनकी क्या दशा होगी? इसीलिए ईश्वर यदि पूरी तौर से शान्त हैं, तो इसीलिए हैं कि उनको स्मरण नहीं रहता।

वेदान्त की भाषा में कहें, तो ब्रह्म के लिये द्वितीय की सत्ता ही नहीं है और भक्ति की भाषा में कहें, तो ईश्वर भूलने वाले स्वभाव के हैं। हनुमानजी बोले – मैं तो सर्वदा यही चेष्टा करता था कि सुग्रीव प्रभु का निरन्तर स्मरण करते रहें, परन्तु जब उन्होंने प्रभु को भुलाया और उनसे मिलने के लिए नहीं गये, तो मुझे चिन्ता हो गई। जिन प्रभु ने इतना कलंक लेकर भी बालि का वध किया, इन्हें राज्य दिलाया, पत्नी से मिलाया, उन्हीं प्रभु को इन्होंने भुला दिया ! तो मैं सुग्रीव के पास गया और सोचा कि इनके मन में डर उत्पन्न हो, ताकि ये भगवान का स्मरण करें, भगवान को याद करें। और मैंने उनको कथा सुनाकर डराया। लेकिन तब तो मेरे आश्चर्य की सीमा न रही, जब मुझे समाचार मिला कि लक्ष्मणजी आये हुए हैं। लक्ष्मणजी कैसे आ गये? और जब मैंने लक्ष्मणजी से सुना कि प्रभु को क्रोध आ गया और उन्होंने क्रोध में कहा – लक्ष्मण, जिस बाण से मैंने बालि का वध किया था, उसी से मैं कल उस मूर्ख सुग्रीव का वध करूँगा –

सुग्रीवहुँ सुधि मोरि बिसारी ।
पावा राज कोस पुर नारी ।
जेहिं सायक मारा मैं बाली ।
तेहिं सर हतौं मूढ़ कहँ काली ।। ४/१७/४-५

हनुमानजी बोले – लक्ष्मणजी से यह सुनते ही मैं गद्गद हो गया कि भाई, सुग्रीव से बढ़कर भाग्यशाली तो कोई नहीं है। – क्यों? बोले – मुझे तो यह चिन्ता थी कि कहीं सुग्रीव भगवान को न भूल गये हों। भूल तो गये ही थे, परन्तु मैं तो यह देखकर चकित हो गया कि भगवान इन्हें बिल्कुल भी नहीं भूले हैं। और याद भी कैसी? भगवान को क्रोध आ गया है और क्रोध में – वे जो कभी नहीं करते, वह किया। एक तो उनको दास के दोष याद नहीं रहते और अपने किये हुए उपकार याद नहीं रहते, परन्तु जो वाक्य उन्होंने कहा है, उसमें तो सब कुछ आ गया। जब उन्होंने कहा – **पावा राज कोष पुर नारी** – तो अपना किया गया उपकार भी याद कर लिया। और जब उन्होंने कहा **सुग्रीवहुँ सुधि मोरि बिसारी** – तो उसमें सुग्रीव का दोष भी याद आ गया। इसमें हनुमानजी ने यह नहीं देखा कि सुग्रीव में दोष आ गया है। वे तो गद्गद हो गये, बोले – प्रभु भूले रहते हैं, यह तो उनके लिए स्वाभाविक है, लेकिन जीव के लिये ईश्वर को भूल जाना जितना दुखद है, उससे अधिक दुखद बात है – ईश्वर जीव को भुला दे। हनुमानजी जब पहली बार प्रभु से मिले थे और प्रभु ने हनुमानजी से परिचय पूछा था कि तुम कौन हो? तो हनुमानजी ने अपना परिचय देते हुए कहा था – मैं मन्द हूँ, मोहवस हूँ, कुटिल हूँ और अज्ञानी हूँ – **एकु मन्द मैं मोहबस कुटिल हृदय अज्ञान**। प्रभु बोले – जब इतने दोष हैं, तब तो बड़ा कष्ट होता होगा? परन्तु इन चारों में से कौन-सा दोष तुम्हें सबसे अधिक कष्ट देता है। हनुमानजी ने कहा – महाराज, ये चारों दोष तो बहुत दिन से है, पर आज आपसे मिलकर जितना दुख हो रहा है, उतना कभी नहीं हुआ था। भगवान से मिलकर हनुमानजी सबसे अधिक दुखी हो गये थे। भगवान ने पूछा – मुझसे मिलकर सबसे बड़ा दुख कैसे हो गया? हनुमानजी बोले – तब हुआ, जब आपने कह दिया कि ब्राह्मण देवता, तुम कौन हो? मैं समझ गया कि आप मुझे भूल गये। आपके भूल जाने से बड़ा दुख तो हमें और कोई हो ही नहीं सकता –

एकु मैं मंद मोहबस कुटिल हृदय अज्ञान ।
पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ दीनबंधु भगवान ।। ४/२

आपने मुझे भुला दिया, मैं आपके द्वारा विस्मृत हो गया – इससे बढ़कर मेरा दुर्भाग्य भला क्या हो सकता है ! हनुमानजी की यह कैसी अनोखी बात है !

सुग्रीव चार महीने भगवान के पास नहीं गये और आपको आश्चर्य होगा कि हनुमानजी भी चार महीने नहीं गये। हनुमानजी का न जाना, तो सन्त की दृष्टि थी, न जाने पर भी, वे तो निरन्तर भगवान के ही जप-ध्यान और उन्हीं में संलग्न हैं। हनुमानजी ने चकित हो कर कहा – चार महीने मैं नहीं गया और चार महीने सुग्रीव भी नहीं गये। तो प्रभु को सबसे पहले यही कहना चाहिए था कि उस हनुमान को बुलाओ, जो सबसे पहले आया था। उसी ने मित्रता कराई थी, उसी से पूछें कि उसने कैसे व्यक्ति के साथ हमारी मित्रता करा दी ! परन्तु प्रभु ने एक बार भी मेरा नाम नहीं लिया। तो मैं क्या हूँ? महान् तो सुग्रीव हैं। सुग्रीव प्रभु को भूल गये, परन्तु प्रभु उनको नहीं भूले। मैं तो उनके सामने कुछ भी नहीं हूँ। प्रभु को मेरी याद नहीं है, परन्तु उनकी इतनी याद है कि उनकी सारी बातें याद आ गईं। इतनी याद आयी कि क्रोध आ गया, यहाँ तक कह डाला कि जिस बाण से मैंने बालि को मारा, उसी से कल सुग्रीव को भी मार डालूँगा। सुनकर लक्ष्मणजी को लगा कि आज तो एक नई बात हो गई। आज तक कभी ऐसा नहीं बोलते थे। ऐसी भाषा बोल रहे हैं ! क्या हो गया

है इन्हें ! उन्होंने प्रभु ने कहा – इस कार्य को कल पर टालना ठीक नहीं होगा; आप कल करेंगे, उससे तो अच्छा होगा कि आप आज्ञा दीजिए और मैं आज ही जाकर अभी कर देता हूँ।

लछिमन क्रोधवंत प्रभु जाना ।
धनुष चढ़ाइ गहे कर बाना ।। ४/१७/८

लेकिन जब रहस्य खुला, तो पता चला कि क्रोध का तो नाटक मात्र था, केवल अभिनय था। लिखा है – शंकरजी ने पार्वतीजी से कहा – जिनके स्मरण मात्र से अभिमान और क्रोध छूट जाते हैं, क्या उन प्रभु को क्रोध आ सकता है?

जासु कृपाँ छूटहिं मद मोहा ।
ता कहुँ उमा कि सपनेहुँ कोहा ।। ४/१७/६

क्रोध नहीं आया, तो क्या उनके लिए क्रोध करना कोई महत्त्वपूर्ण बात है? क्या सुग्रीव की सहायता के बिना सीताजी का पता नहीं लगेगा? क्या वे रावण का वध नहीं कर सकेंगे? वे तो क्षण भर में संकल्प मात्र से सब कुछ कर सकते हैं। परन्तु सुग्रीव पर इतना क्रोध? परन्तु जब उन्होंने लक्ष्मणजी से अगला वाक्य कहा, तो पता चल गया कि उस क्रोध का उद्देश्य तो कुछ दूसरा ही था। लक्ष्मणजी जब जाने के लिए प्रस्तुत हो गये, तो प्रभु ने कहा – मारने का अर्थ शब्दश: मारना मत ले लेना। प्रत्येक को अलग-अलग तरह से मारा जाता है। याद रखना कि यह सुग्रीव बड़ा डरपोक है। डर के मारे ही तो वह भक्त बना था। बालि मर गया, तो उसका डर छूट गया और तब वह मुझे भी भूल गया। तो डर ही उसकी दवा है – फिर से उसके मन में भय पैदा करो। जब लक्ष्मणजी चलने लगे, तो प्रभु और भी चिन्तित हो गये। लक्ष्मणजी को देखकर सभी थर्रा जाते हैं। वे जब क्रोधपूर्ण वचन बोलते हैं, तो पृथ्वी डगमगा उठती है, दशों दिशाओं के हाथी काँप उठते हैं –

लखन सकोप बचन जे बोले ।
डगमगानि महि दिग्गज डोले ।। १/२५४/१

ऐसा व्यक्ति यदि किसी को डराने पहुँच जाय, तो उसकी क्या दशा होगी? प्रभु ने रोक लिया, बोले – ध्यान रखना, वह जितना बड़ा डरपोक है, उतना ही बड़ा भगोड़ा भी है। उसे ऐसा न डराना कि वह कहीं और भाग जाय। मैं तुम्हें इसके लिए थोड़े ही भेज रहा हूँ। इधर ही ले आना, कहीं और न जाने पाये –

तब अनुजहि समुझावा रघुपति करुना सींव ।
भय देखाइ लै आवहु तात सखा सुग्रीव ।। ४/१८

प्रभु के क्रोध के मूल में भी करुणा थी, कृपा थी। तभी लक्ष्मणजी के पहुँचने पर हनुमानजी के मन में सुग्रीव के प्रति इतनी श्रद्धा हुई – इन पर प्रभु की कितनी कृपा है, इनका स्मरण किया, क्रोध का नाटक किया और लक्ष्मणजी को भेजा कि उसे बुलाकर ले आओ। अत: इनसे अधिक महान् कौन होगा? इतनी निरभिमानिता ! इतना उत्कृष्ट चरित्र ! हनुमानजी में सुग्रीव के प्रति आस्था है, इसीलिए वे उनसे इस प्रकार प्रार्थना करके आज्ञा लेकर प्रभु के पास आते हैं।

सर्वोच्च स्थिति तो यह है कि व्यक्ति स्वयं उच्च स्थिति में पहुँचकर भी यह आशा न पाल ले कि प्रत्येक व्यक्ति ठीक उसी के समान बन जाय। अपने समान बनाने की इच्छा भी एक गुण है। परन्तु यह स्थिति, उससे भिन्न है और यह महापुरुषों के जीवन में दिखाई देती है।

महर्षि भरद्वाज ने आज तक सिद्धियों के द्वारा अपने लिए किसी भी प्रकार की भोग-सामग्री प्राप्त नहीं की थी, परन्तु जब उन्होंने भरतजी, उनकी सेना तथा प्रजा का स्वागत किया, तो उन्होंने उन लोगों के लिये माला-चन्दन आदि सब प्रकार की भोग-सामग्रियों की व्यवस्था की –

स्त्रक चंदन बनितादिक भोगा ।
देखि हरष बिसमय बस लोगा ।। २/२१४/८

वह प्रसंग बड़ा अटपटा लगता है, परन्तु इसका अभिप्राय यह है कि महर्षि स्वयं तो निरपेक्ष हैं, तपस्या में रत रहते हैं और सामनेवाले अतिथि भी उतने ही महान् थे। वे उन भोगों से भागे नहीं, बल्कि रात भर उसी आश्रम में रहे –

संपति चकइ भरतु चक मुनि आयस खेलवार ।
तेहि निसि आश्रम पिंजरा राखे भा भिनुसार ।। २/२१५

किसी ने सुना कि चकवा और चकवी रात में एक दूसरे से दूर हो जाते हैं। उसने सोचा कि हम इस नियम को बदल देंगे। उसने एक पिंजरा बनवाया और उसमें चकवा-चकवी – दोनों को रख दिया। परन्तु यह एक प्राकृतिक स्वभाव है कि रात में निकट होते हुये भी दोनों ने एक-दूसरे की ओर नहीं देखा। गोस्वामीजी ने कहा – मुनि का आश्रम पिंजरा है। सम्पत्ति चकवी और भरतजी चक्रवाक हैं। उन्होंने कहीं से भी उन भोग-पदार्थों की ओर नहीं देखा।

श्रीमद्भागवत में बड़े विस्तार से लिखा है – मनु की पुत्री देवहूति का विवाह कर्दम ऋषि से हुआ था। कर्दम ऋषि ने देवहूति के लिये जितनी भोग-सामग्रियाँ प्रस्तुत कीं, जिस प्रकार अपने संकल्प से विमान का सृजन किया, उनके बारे में पढ़कर बड़ा आश्चर्य होता है। लेकिन वे स्वयं निरपेक्ष थे। देवहूति को सन्तान की कामना है। सन्तान के गर्भ में आते ही कर्दम ऋषि को लगा कि बस, अब मेरी अपेक्षा नहीं रह गई। देवहूति सन्तान चाहती थी, वह हो जायेगा। शिशु के गर्भ रहते ही कर्दम ऋषि बिल्कुल सहज भाव से पत्नी तथा सारे भोगों को छोड़कर वन की ओर चले जाते हैं। बाद में देवहूति के गर्भ से भगवान कपिलदेव का जन्म हुआ।

भगवान कपिलदेव ने देवहूति को जो उपदेश दिये, उनका सांख्य शास्त्र के रूप में वर्णन किया गया है। भगवान कपिल – सृष्टि के उपादान, सृष्टि का निर्माण आदि का बड़ा

विस्तृत वर्णन करते हैं। वे बताते हैं कि व्यक्ति किस प्रकार प्रकृति से लिप्त होकर दुख का भागी बनता है तथा वह किस प्रकार प्रकृति की ओर से उदासीन बने और उदासीन बनकर दुखों से मुक्त हो जाय। बड़े दिव्य उपदेश हैं। उनमें संकेत मानो यह था कि जागतिक भोग की वस्तुएँ मिलने के बाद भी ये भोग अन्ततोगत्वा व्यक्ति को शान्ति नहीं दे सकते।

भगवान कपिल की यह कृपा थी, पिता तो पहले ही वन में चले गये थे, उन्होंने अपनी माँ को भी ऐसा सार्थक उपदेश दिया कि देवहूति धन्य हो गईं। उन्होंने भक्तियोग का और सांख्ययोग का भी उपदेश दिया। भगवान कपिल का संकेत यह था कि जीवन में भोगों को भोगने के बाद भी हम अन्त में दुख ही देखेंगे; और जब तक हम भोगों से विरत नहीं होंगे, जब तक विषयों का परित्याग नहीं कर देंगे, जब तक जीवन में निवृत्ति नहीं आयेगी, तब तक हम शान्त नहीं हो सकते।

इस प्रकार ये दो परम्पराएँ हैं – एक निवृत्ति-मार्ग की, जिसका सर्जन देवहूति तथा कर्दम ऋषि के माध्यम से हुआ। दूसरी है प्रवृत्ति-मार्ग की परम्परा, जिसका संकेत ध्रुव के द्वारा हुआ। समाज में दोनों ही प्रकार के व्यक्ति होते हैं, दोनों ही प्रकार के अधिकारी होते हैं और जो, जिसका अधिकारी है, उसके लिये वही कल्याणकारी है।

परन्तु इतने पर भी मनु के जीवन में सन्तोष नहीं हुआ। वे बूढ़े हो गये थे और बूढ़े होने के बाद उनके अन्त:करण में बड़ा दुख उदित हुआ। साधना के सन्दर्भ में यह एक बड़े महत्त्व का सूत्र है – एक दुख तो अभावजन्य होता है – जिसके पास भोजन नहीं है, वस्त्र नहीं है, मकान नहीं है, जरूरत की चीजें नहीं हैं, वह बेचारा तो दुखी ही होगा! परन्तु महाराज मनु के जीवन में ऐसी कोई बात नहीं है। वे चक्रवर्ती सम्राट् हैं। उनके जीवन में परम सुख-समृद्धि विद्यमान हैं। उनका आचरण धर्म के अनुकूल है और समाज को भी उन्होंने उसी धर्म की शिक्षा दी। उनकी दृष्टि में शास्त्र – भगवान की आज्ञा थी और उस आज्ञा का पालन कराना अपना कर्तव्य मानकर उन्होंने स्मृति-धर्म का निरूपण करते हुए समाज को संचालित करने की चेष्टा की।

तेहिं मनु राज कीन्ह बहु काला।
प्रभु आयसु बहु बिधि प्रतिपाला।। १/१४२/८

पर उन मनु के जीवन में भी एक दिन दुख की अनुभूति हुई; और वह दुख साधारण नहीं था, बड़ा भारी दुख –

हृदयँ बहुत दुख लाग जनम गयउ हरिभगति बिनु।।१/१४२

इनका यह दुख अभावजन्य नहीं, बल्कि विचारजन्य है। अभावजन्य दुख व्यक्ति को निराश बनाता है और दूसरी दशा पुरुषार्थ की दिशा में ले जाता है कि दुख है, तो हम दुख को मिटाने का प्रयत्न करें, पुरुषार्थ करें। दुख आने पर व्यक्ति कभी इतना निराश हो जाता है कि आघात नहीं सह पाता, तो उसे लगता है कि जीवन व्यर्थ है। यदि दुख से व्यक्ति निराश होता है, तब यह व्यक्ति का सबसे बड़ा तमोगुणी पक्ष है। उसके जीवन में दुख तो था ही और उससे उसे निराशा भी आ गई, तो वह तमोमय अन्धकार में डूब गया। परन्तु यदि दुख आने पर व्यक्ति को अपने जीवन में पुरुषार्थ करने की इच्छा हुई, तो वह रजोगुण की दिशा में अग्रसर होगा कि हम ऐसा कर्म करें, जिससे हमारे जीवन में जिन वस्तुओं का अभाव है, वे हमें प्राप्त हों। ऐसा हो, तो रजोगुण की दिशा में गया हुआ दुख व्यक्ति को निष्क्रिय और आलसी नहीं, बल्कि पुरुषार्थी बनायेगा। वह तमोगुण से ऊपर उठकर कर्म की ओर अग्रसर होगा।

परन्तु मनु के जीवन का दुख इस बात की ओर संकेत करता है कि जहाँ पर सभी वस्तुएँ अनुकूल हों – पत्नी पतिव्रता तथा आज्ञाकारिणी हो, पुत्र महानतम पितृभक्त तथा आज्ञाकारी हो, समाज तथा परिवार में कहीं बैर या विद्रोह न हो, ऐसे महाराज मनु की वृद्धावस्था आने पर, उनके अन्त:करण में महान् दुख हुआ। यह विचारजन्य दुख था। यही हमारे सनातन धर्म तथा सन्तों-महापुरुषों का चिन्तन है। बहिरंग दृष्टि से मनुष्य जीवन की समस्याओं का समाधान क्या व्यक्ति के अन्त:करण को भी पूर्णता का अनुभव कराता है? क्या वस्तुओं के बीच किसी तरह के अभाव का बोध नहीं होता?

एक सूत्र है। दुख अच्छा है या बुरा? सुख अच्छा है या बुरा? कोई भी कहेगा कि सुख अच्छा है और दुख बुरा है। यदि कोई साधकवृत्ति का हो, तो कहेगा कि सुख बुरा है और दुख अच्छा है। परन्तु उत्तर तो ये दोनों सही नहीं है।

रामायण में बड़ी मीठी बात कही गई है – संसार में कोई भी ऐसा नहीं है, जो रोगी न हो। सारे लोग रोगी हैं। – महाराज, कौन-सा रोग है लोगों को? किस रोग के रोगी है? बोले – पहला रोग है 'हर्ष'। सुनकर बड़ा अटपटा लगता है। दुख को रोग बताते, तो समझ में आता है, पर कहते हैं कि हर्ष भी रोग है और सभी लोग इस रोग से ग्रस्त हैं।

एहि बिधि सकल जीव जग रोगी।
सोक हरष भय प्रीती बियोगी।। ७/१२२/१

यह हर्ष ही बता रहा है कि भविष्य में शोक आने वाला है। कोई अपेक्षित वस्तु मिल गई तो हर्षित हो गये, परन्तु संसार में कोई वस्तु स्थिर रहने वाली तो है नहीं। उसके जाने पर शोक होगा। जैसे कोई कहे कि रोग तो दुखद है और मिठाई सुखद। परन्तु यदि मिठाई खाने के बाद रोग ही होना है, तो बुद्धिमान व्यक्ति समझ लेगा कि केवल रोग ही रोग नहीं, बल्कि मिठाई खाना भी रोग ही है। क्योंकि उस मिठाई के चक्कर में ही तो हमने रोग को निमंत्रण दे दिया। जब कोई व्यक्ति विचार करता है कि मनुष्य-जीवन की परिपूर्णता किसमें है? सुख अच्छा लगता है, क्या सुख ही जीवन की

परिपूर्णता है? दुख अच्छा नहीं लगता, तो क्या दुख ही जीवन की अपूर्णता है। परन्तु बात ऐसी नहीं है। सुख और दुख – दोनों अच्छे हैं और दोनों बुरे हैं। महत्त्व सुख और दुख का नहीं, बल्कि इस बात का है कि सुख-दुख का हमारे अन्त:करण पर क्या प्रभाव पड़ता है? यही कसौटी है।

यह भी एक प्रश्न आता है कि सुख-दुख का कारण क्या है? तो सरल भाषा में कह दिया जाता है कि दुख पाप का और सुख पुण्य का परिणाम है। किन्तु यदि गहराई से विचार करके देखें, तो दुख पाप का भी परिणाम हो सकता है और पुण्य का भी। इसका निर्णय कैसे हो? दुख आने पर व्यक्ति यदि भगवान को भूल जाय और वह उससे टूटता चला जाय, तो यह पाप का परिणाम है। पर यदि दुख में भगवान की याद बनी रहे और भक्ति बढ़ जाय, तो वह दुख पुण्य का परिणाम है। वह पाप का परिणाम हो ही नहीं सकता। पाप का परिणाम होगा, तो व्यक्ति ईश्वर को जरूर भूल जायेगा। इसी तरह यदि सुख को पाने के बाद व्यक्ति सुखों में ही डूबकर ईश्वर को भूल गया, तो वह सुख भी पाप का ही परिणाम है। परन्तु जिस सुख को पाने के बाद व्यक्ति के हृदय में भगवान के प्रति कृतज्ञता का उदय हो और वह कहे – हे प्रभो, आपने जो दिया है, हम उसके अधिकारी नहीं हैं; यह तो आपकी कृपा है। ऐसा सुख पुण्य का परिणाम है।

गोस्वामीजी को बड़ा सम्मान मिला, तो वे यह सोचकर गद्‌गद हो जाते और पुरानी बातें याद करते हुए ऐसी बातें कहते कि पढ़कर हँसी आ जाती है। बोले – अब तो दोनों समय पूड़ियाँ खाने को मिलती हैं। पढ़कर लगता है कि क्या पूड़ी कोई बहुत बड़ी वस्तु है? लाखों लोग तो पूड़ियाँ खाते हैं, पर वे तो ऐसा नहीं कहते! गोस्वामीजी को पूड़ियाँ परोसी जातीं, तो उन्हें अपने जीवन के वे दिन याद आ जाते, जब उन्हें दिन भर में खाने के लिये रूखी-सूखी रोटी का टुकड़ा भी नहीं मिल पाता था। कभी-कभी उन्हें चने के चार दानें तक नहीं मिल पाते। उन दिनों की याद करके उनकी आँखों से आँसू आ जाते। उन्होंने लिखा है – मैं वही तुलसी हूँ, जो लड़कपन में थोड़े से आटे के लिए, चार दाने चने के लिये भीख माँगता था, पर वह भी नहीं मिलता था और अब तो प्रभु की कृपा दोनों समय पूड़ियाँ खाने को मिलती हैं –

ते तुलसी ऐसे हुते, मिले न चुटकी चून।
अब तो राम कृपा भई, लुचुई दूनो जून ।।

आज हमारे एक निकटस्थ ने दूसरे से कहा – अरे, आप तो हमें दो कौड़ी का समझते होंगे। मैं बोला – चलिए, आप तो गोस्वामीजी से बहुत आगे हैं, क्योंकि वे तो अपने को आधी कौड़ी का ही मानते थे –

लहइ न आधी कौड़िहू, को चाहै केहि काज।
सो तुलसी महँगो कियो राम गरीबनिवाज ॥ दोहा.१०८

आधी कौड़ी के मूल्यवाले तुलसीदास को यदि आपने इतना मूल्यवान बना दिया, तो यह आपकी कृपा है। ऐसी कृपा की स्मृति अगर व्यक्ति को भक्ति की दिशा में ले जाय, तो ऐसा सुख निश्चित रूप से कल्याणकारी है। परन्तु बहुधा ऐसा होता नहीं। व्यक्ति इन वस्तुओं को पाकर, उनके स्वाद में ही डूब जाता है, समा जाता है, भक्ति की दिशा में नहीं बढ़ पाता। इसलिए दुखी तो सारा संसार है; ऐसा कौन व्यक्ति है, जिसके जीवन में कोई दुख न हो। कबीरदास जी का वह प्रसिद्ध वाक्य तो आपने सुना ही होगा – राजा, प्रजा सब दुखी हैं, पर साधु का दुख तो दूना है –

राजा दुखी परजा दुखी साधुन के दूख दूना ।।

साधु का दुख दूना है इसलिये कि उसको अपना ही नहीं, अपने चेलों की भी, तथा अन्य लोगों की भी चिन्ता है। जो व्यक्ति स्वार्थी है, उसे तो अपना दुख ही दुख लगता है। नारदजी भ्रमण करते हुए जब लोगों को दुखी देखते हैं, तो बहुत दुखी हो जाते हैं – उनको महान् दुख होता है।

यह दुख एक बहुत बड़ी औषधि बन सकता है, बशर्ते व्यक्ति अपने आपको उतना छोटा न बना ले। भौतिक विज्ञान में भी उन्नति कितनी हुई? ग्रहों की यात्रा क्यों की जा रही है? क्या इसके बिना व्यक्ति नहीं रह सकता था? क्या व्यक्ति के लिए यह आवश्यक है कि वह चन्द्रमा पर जाए और वहाँ के रहस्य को जाने? परन्तु मनुष्य के मन की जिज्ञासा उसे प्रेरित करती है कि इस अनन्त आकाश में – जिसमें हम स्थित हैं, उसकी क्या स्थिति है? ग्रह, नक्षत्र – ये सब क्या हैं? यह जिज्ञासा भौतिक दिशा में ज्ञान – भौतिक-विज्ञान की ओर प्रेरित करती हैं। भौतिक विज्ञान कितना आगे बढ़ गया! उसमें आप कितने बड़े चमत्कार देखते हैं! यही जिज्ञासा-वृत्ति, जब किसी आध्यात्मिक चेतना वाले व्यक्ति में उत्पन्न होती है, तो उसे ऐसा लगता है कि सब कुछ होते हुए भी हम सचमुच सुखी नहीं हैं। जिसे सच्चा सुख कहते हैं, जो पूर्णता है, वह मुझे प्राप्त नहीं है। उसे एक विशेष प्रकार का दुख है, जो भौतिक वस्तुओं से सन्तुष्ट नहीं होता, अनुकूलताओं से सन्तुष्ट नहीं होता, भोगों से सन्तुष्ट नहीं होता, तब उसे लगता है कि इनमें जीवन की सार्थकता नहीं है।

यही मनु का दुख है। यदि हम मनु की सन्तान – मानव हैं, तो मनु के जीवन में जो दुख हुआ, वह विचारजन्य दुख हमारे जीवन में भी आना चाहिए। जब वह दुख उनके जीवन में जागृत होता है, तो वह उन्हें साधना की दिशा में प्रेरित करता है। प्रारम्भ में पुरुषार्थमयी साधना होती है। पुरुषार्थ तो अब तक राजा के रूप में करते ही रहे, परन्तु अब जो साधना का पुरुषार्थ होता है, वह ईश्वर को पाने के लिए है; और वही क्रमश: कृपा और शरणागति तक पहुँचाती है।

❖ (क्रमश:) ❖

आत्माराम के संस्मरण (३४)

स्वामी जपानन्द

(रामकृष्ण संघ के एक वरिष्ठ संन्यासी स्वामी जपानन्द जी (१८९८-१९७२) श्रीमाँ सारदादेवी के शिष्य थे। स्वामी ब्रह्मानन्दजी से उन्हें संन्यास-दीक्षा मिली थी। उन्होंने बँगला में श्रीरामकृष्ण के कुछ शिष्यों तथा अपने अनुभवों के आधार पर कुछ रोचक संस्मरण लिपिबद्ध किये थे। अब तक हम उनके तीन ग्रन्थों – 'प्रभु परमेश्वर जब रक्षा करें', 'मानवता की झाँकी' एवं 'आत्माराम की आत्मकथा' का धारावाहिक प्रकाशन कर चुके हैं। १९६५-६६ के दौरान उन्होंने एक बार पुन: कुछ संस्मरणों को बँगला भाषा में लिखा था। उनमें से कुछ अप्रकाशित हैं। पूर्व-प्रकाशित घटनाएँ भी भिन्न विवरणों के साथ लिखी गयी हैं, अत: पुनरुक्त होने पर भी रोचक, शिक्षाप्रद तथा प्रेरणादायी हैं। – सं.)

ढाका की बाढ़ (१९३९)

ढाका। १९३९ ई. की भयंकर बाढ़ – जल-प्लावन। संन्यासी राहत-कार्य में लगा था; नाव में सवार होकर ६८ गाँवों में सहायता पहुँचाने जा रहा था। साथ में २-४ कॉलेज के छात्रों तथा भक्त-परिवारों के लड़कों को भी ले जा रहा था। प्रोफेसर जुनारकर ने कहा कि वे अपने कॉलेज के कुछ लड़कों को लेकर कुछ गाँवों में काम करना चाहते हैं। वे चाहते थे कि मैं उन्हें दिखा दूँ और सिखा दूँ कि राहत-सामग्री कैसे दी जाती है। अपने भी कार्य में सहायता होगी, सोचकर संन्यासी तत्काल राजी हो गया।

इसके बाद बूढ़ी गंगा के उस पार स्थित आठ गाँवों में, जो बाढ़ से विशेष रूप से क्षतिग्रस्त हुए थे, ले जाकर दिखा दिया। जुनारकर के लिये लड़कों को दूर ले जाने में असुविधा थी, इसीलिये वैसा करना पड़ा। पहले दिन ही जुनारकर को अच्छा अनुभव हुआ। नाव को गाँव-गाँव में ले जाकर पूछताछ करना और हर व्यक्ति के पीछे डेढ़ पाव चावल और कुछ वस्त्र देना।

उनमें एक लगभग पचास के आयु की कुली स्त्री थी। वह नाव को देखते ही तुरन्त अपने घर में घुस जाती और एक फटा हुआ कपड़ा पहनकर बाहर आती और इस प्रकार बैठ जाती कि बाहर से ही उसके सारे अंग दिखायी देते।

प्रोफेसर जुनारकर ने तो देखते ही मुँह फिरा लिया। संन्यासी ने उस महिला को डाँटते हुए ठीक से बैठने को कहा। वस्त्र पाने के लोभ में ही वह उस तरह का 'प्रदर्शन' कर रही थी। यह बताते हुए वह बोला, "यह दरिद्रता का पाप है! मनुष्य को लज्जित करके उनसे सहायता लेने की इन लोगों की प्रवृत्ति हो गयी है। इसे दूर कर पाना आसान बात नहीं है। इसका एकमात्र उपाय है शिक्षा – समुचित शिक्षा। इनमें आत्म-सम्मान का भाव नहीं है, नष्ट हो चुका है और वह इनके मन में उत्पन्न करना सहज कार्य नहीं है।"

उन्हीं दिनों एक दिन दोपहर के डेढ़ बजे संन्यासी भोजन करने बैठा था। वह उसी समय राहत-कार्य करके लौटा था। बाकी सबका भोजन हो चुका था। उसी समय मानिकान्दा के सेवाव्रती डॉ. घोष के आश्रम से दो कर्मी आ पहुँचे। पूछने पर पता चला कि उन लोगों का भोजन नहीं हुआ है। खाने के लिये कहने पर वे बोले, "पहले कहिये कि हम लोगों के भयंकर संकट में सहायता करेंगे। दूसरा कोई चारा न देखकर ही हम लोग आपके पास आये हैं। हम लोग १६ गाँवों में सहायता पहुँचा रहे थे, लेकिन रुपये समाप्त हो गये हैं। अगले सप्ताह चावल देने में असमर्थ हैं। नहीं देने से काम नहीं चलेगा। आश्रम की बहुत बदनामी होगी।"

संन्यासी ने कहा, "पहली बात यह है कि ६८ गाँवों में मुझे अकेले ही सारा कार्य करना पड़ रहा है और बेलूड़ मठ से महासचिव महाराज ने सूचित कर दिया है कि वहाँ से सहकारियों या रुपयों की सहायता न हो सकेगी। आप लोगों को तो अभाव होने की बात ही नहीं है। डॉ. बाबू तो कांग्रेस के बड़े नेता है और सुनने में आया है कि वल्लभ भाई पटेल ने इन बाढ़पीड़ितों की सेवा के लिये सुभाषबाबू को एक लाख रुपये दिये हैं। यदि यह बात सत्य है, तो फिर आप लोग तो कांग्रेसी हैं, उनके पास से रुपये क्यों नहीं ले लेते?"

वे बोले, "उसी की चेष्टा में ढाका आये थे, परन्तु यहाँ के नेताओं ने सुभाष बाबू के आदेश का उल्लेख करते हुए कहा कि वे एक भी पैसा देने में असमर्थ हैं। स्पष्ट निर्देश है कि डॉक्टर की टोली के साथ कोई सहयोग न किया जाय। आप मानिकान्दा आकर देखिये। सारी व्यवस्था रहेगी। विलम्ब बिल्कुल भी नहीं होगा। इस संकट में आपको सहायता करनी ही होगी। अन्यथा हम अन्न ग्रहण नहीं करेंगे।"

हारकर संन्यासी को राजी होना पड़ा – दिन निश्चित करके उनसे नाव तैयार रखने को कहा। स्टीमर में कुण्डू लोगों के भाग्यकुल गाँव से नाव में मानिकान्दा जाते हैं। निर्धारित दिन भोर के समय जब स्टीमर से भाग्यकूल पहुँचा, तब वहाँ मूसलाधार वर्षा हो रही थी। कई छोटी-छोटी नावें उपस्थित थीं। संन्यासी ने वहाँ एक खूब तगड़े नाववाले को संकेत से बुलाकर बताया कि मानिकान्दा जाना है और वहाँ जल्दी पहुँचाना हैं। कितना समय लगेगा और भाड़ा कितना होगा?

– "एक घण्टे में पहुँचा दूँगा और भाड़ा डेढ़ रुपये।"

संन्यासी तथास्तु कहकर बैठ गया। उसी दिन स्टीमर में लौटना था, इसीलिये कुछ देखने का कार्य पूरा कर लेने की

जल्दी थी। वर्षा चालू थी। मुसलमान नाववाला अकेले ही यथासाध्य तेजी से नाव चला रहा था।

संन्यासी ने पूछा – तुम और क्या काम करते हो?

उत्तर – मछली पकड़ता हूँ। मुल्लाजी ने कहा है कि मछली पकड़ने में कोई दोष नहीं है।

प्रश्न – किस समय मछलियाँ पकड़ने जाते हो?

उत्तर – भोर में चार या साढ़े चार बजे।

प्रश्न – लौटते कब हो?

उत्तर – कभी उसी दिन शाम को, दिया-बत्ती के समय।

प्रश्न – दोपहर में खाने आते हो क्या?

उत्तर – जी नहीं, नाव में ही भात पका लेता हूँ।

प्रश्न – दिन में कितने रुपये मिल जाते हैं?

उत्तर – ५-६ या ७ रुपये और कभी अधिक हुआ तो १० रुपये तक हो जाते हैं। परन्तु ५-६ के नीचे नहीं होता।

प्रश्न – स्टीमर के समय भाड़े से कमाते हो, तो लगता है कि आजकल मछली पकड़ने नहीं जाते।

उत्तर – वर्षा के समय किसी-किसी दिन स्टीमर के समय हाजिर रहता हूँ। भाड़े के २-३ रुपये मिल जाते हैं।

सवा एक बजे नौका मानिकान्दा पहुँची। आश्रम पास में ही था। आलू के भर्ते के साथ भात खाकर आश्रम के दो कर्मियों के साथ रवाना हुआ। नाव तैयार थी, मल्लाह हिन्दू था। उसे तेजी से नाव चलाने को कहा गया, परन्तु नाव मानो चल ही नहीं रही थी। धीरे-धीरे बड़े कष्ट से चलाते देखकर उसे फिर से जल्दी चलाने के लिये कहना पड़ा, क्योंकि शाम को स्टीमर पकड़ना था।

– "जी, वह बैंक पार होते ही नाव तेजी से चलेगी। थोड़ा तम्बाकू पी लूँ।" इतना कहकर वह तम्बाकू पीने के लिये बैठ गया। हमारे एक कर्मी ने जाकर पतवार थामी।

संन्यासी ने पहले तो संगियों को बताया कि उन्होंने ऐसे आलसी व्यक्ति की नाव भाड़े पर लेकर नितान्त भूल की है। और उसके बाद वह मल्लाह से बातें करने लगा।

प्रश्न – तुम यही कार्य करते हो या और भी कोई काम करते हो?

उत्तर – जी, मछलियाँ भी पकड़ता हूँ।

प्रश्न – मछलियाँ पकड़कर हर रोज कितना मिलता है?

उत्तर – जी, तीन से चार रुपये तक मिल जाते हैं।

प्रश्न – मछली पकड़ने कितने बजे निकलते हो?

उत्तर – जी, सूर्योदय होने लगता है, तभी निकलता हूँ।

प्रश्न – कब लौटते हो?

उत्तर – जी, दोपहर में लौट आता हूँ। उसके बाद थोड़ा विश्राम करके फिर जाता हूँ और बिल्कुल शाम के समय घर लौटता हूँ। वर्षा अधिक हो, तो तीसरे पहर नहीं जाता। घरवाली जाने नहीं देती।

प्रश्न – इस नाव के भाड़े से कितना कमा लेते हो?

उत्तर – जी, दिन में डेढ़-दो रुपये मिल जाते हैं।

संन्यासी ने ऐसा उत्तर सुनकर उसको उस मुसलमान युवक की बात बतायी। इस पर वह बोला – "जी, वे लोग मुसलमान हैं। वे लोग पैसे कमाने के लिये बहुत मेहनत करते हैं। दोपहर में खाने के लिये भी घर नहीं जाते। काफी रात तक मछलियाँ पकड़ते हैं। जी, हम लोग क्या उन लोगों की बराबरी कर सकते हैं? दोपहर को घर आकर थोड़ा-सा खाकर विश्राम किये बिना हमारा स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता।"

इसके बाद संन्यासी ने आश्रम के कर्मियों से कहा, "ऐसे अभागों की निर्धनता दूर करना कठिन या असम्भव भी है। प्रतिस्पर्धा में ये लोग कैसे टिक सकेंगे? इन लोगों को यदि आप थोड़ा कर्मठ बना सकें, तो काम के हों।"

इसके बाद उसने श्रीरामकृष्ण के दो किसानों की कथा बतायी। उनमें एक दृढ़प्रतिज्ञ था कि खेत में पानी लाये बिना अन्न नहीं ग्रहण करूँगा। स्त्री बुलाने आयी, "चलो, समय हो गया है। थोड़ा-सा खा लो।" इस पर वह कुदाल लेकर उसे मारने दौड़ा – "खेत में पानी नहीं पहुँचा, तो बाल-बच्चे खायेंगे क्या? इस बार वर्षा नहीं हुई है। फसल न होने पर सब मरेंगे। तू यहाँ से चली जा।" इसके बाद जब खेत में पानी आ गया तब वह घर लौटा और स्नान आदि के बाद भोजन करके विश्राम करने लगा।

और दूसरा किसान – उसकी स्त्री ने ज्योंही बुलाया, उसने त्योंही कुदाल रख दिया और बोला, "तू जब कहती है, तो चल।" इतना कहकर वह घर लौट गया। आखिरकार उसके खेत में पानी नहीं आया।

"दृढ़प्रतिज्ञ और कर्मठ हुए बिना निर्धनता के चंगुल से मुक्त नहीं हुआ जा सकता" – यही बात इन हतभागे आरामप्रिय लोगों को बताइये।

इसके बाद संन्यासी किसी प्रकार भाग्यकूल जाकर स्टीमर पकड़ने में सक्षम हुआ।

संन्यासी ढाका लौटा और अगले सप्ताह आश्रम में रहकर होम्योपैथी पढ़नेवाले सिलहट के एक युवक – रसमय दत्त को साथ लेकर वहाँ गया और एक केन्द्र की स्थापना करके उसे कार्य समझाकर लौटा। वह केन्द्र डेढ़ महीने चलाया गया था। मिशन की ओर से १२ गाँव के लोगों को सहायता दी गयी थी। बाकी ४ गाँवों में मानिकान्दा के आश्रम ने राहत-कार्य चलाया। बाढ़ का जल सूखते ही खेती-बारी का कार्य शुरू हुआ और सहायता की कोई विशेष

आवश्यकता नहीं रह गयी।

ढाका की बात है। १९३९ ई.। एक लड़का दर्शनशास्त्र से एम. ए. पढ़ रहा था। वह संन्यासी के पास प्राय: ही आता और अनेक प्रकार के प्रश्न करता। एक दिन भ्रम और भ्रान्ति के विषय में काफी चर्चा तथा तर्क किया। जाते समय कहकर गया कि अगले दिन वह फिर आयेगा और इस विषय में यूरोप तथा भारत के दार्शनिकों के मत पर चर्चा करेगा। परन्तु उसके न आने पर संन्यासी ने उसके घर के पास रहनेवाले एक छात्र से कहा, ''आने को कह गया था, परन्तु आया क्यों नहीं? ऐसा नहीं करना चाहिये। वचन देने के बाद यथासाध्य उसे पूरा करना चाहिये। ऐसा अभ्यास रखना बहुत अच्छा है और इससे सारा व्यवहार भी सुचारु रूप से चलता है। अंग्रेजों को देखो – यदि किसी को घर या दफ्तर में बुलाते हैं, तो जो समय देते हैं, ठीक उस समय उपस्थित रहते हैं। यदि किसी विशेष कारणवश नहीं आ सके या अनुपस्थित रहने को बाध्य हुए, तो सूचना भेज देते हैं या पत्र लिखकर क्षमा माँग लेते हैं। हमारे लिये ऐसी भद्रता सीखने की नितान्त आवश्यकता है। देखो न, ठाकुर जब किसी को वचन देते थे, तो उसे भूलते न थे, अवश्य पूरा करते थे; और दूसरी ओर भाव में विभोर होकर कपड़ों तक की सुध भूल जाते थे, परन्तु ठीक समय पर उन्हें होश आ जाता था और वे अपने वचन का पालन करते थे। किसी के पास जाने की बात होती, तो अवश्य जाते थे। यदि कोई कह जाता 'अमुक दिन आऊँगा', परन्तु नहीं आता, तो उस पर बड़े नाराज होते और डाँटते, विशेषकर उन युवा भक्तों को, जो बाद में संन्यासी हुए थे।''

लड़का पता लगाने गया कि वह आया क्यों नहीं ! वापस आकर बोला – ''वह तो बिस्तर पकड़े हुए है। उसकी माँ ने बताया कि वह मौत के मुख से बचा है। पिछली रात को जब वह ट्यूशन करके घर लौट रहा था, तो उनके घर की गली के मोड़ पर किसी ने उस पर प्रहार किया या वैसा ही कुछ हुआ। खून से लथपथ होकर उसने जोर से चीत्कार किया और बेहोश होकर गिर पड़ा। उसकी माँ ने वह चीत्कार सुना और चिन्तित होकर पड़ोस के दो-एक लोगों को बुलाकर हाथ में लालटेन लिये उनके साथ वहाँ गयी। इसके बाद वह किसी प्रकार उसे पकड़कर घर लायी। बाद में डॉक्टर आकर मरहम-पट्टी आदि कर गया है। उसे होश तो आ गया है, परन्तु वह इतना दुर्बल है कि कुछ बोल नहीं पा रहा है।''

७-८ दिनों बाद वही युवक संन्यासी के पास आया। उसके सिर पर चोट का निशान था और हाथ की उंगलियों में भी घाव था। – क्या बात है?

उत्तर – जी, भ्रान्ति हो गयी थी !

संन्यासी – वह क्या?

उत्तर – जी, आपके साथ तो भ्रम और भ्रान्ति के विषय में खूब तर्क करके गया। दिमाग में वे ही बातें घूम रही थीं। रात को एक ट्यूशन करने जाता हूँ। लौटने में रात के ग्यारह, साढ़े ग्यारह बज जाते हैं। हमारा घर एक अन्धी गली के अन्त में है। दोनों ओर नवाब साहबों के समय की ऊँची दीवारें हैं। गली के ठीक मोड़ पर ही नगरपालिका का एक किरोसिन तेल का लैंपपोस्ट है। गली में घुसने के पहले मैंने देखा – एक भीषण आकृति वाला पुरुष आक्रामक मुद्रा में सामने खड़ा है। मैं थोड़ा कसरत करता हूँ और थोड़ी-बहुत मुक्केबाजी भी जानता हूँ। इसलिये मैंने झट से निर्णय कर लिया कि यदि मैं उछलकर उसके मुख पर दो घूसे जड़ सकूँ, तो सम्भवत: मैं बाजी जीत जाऊँगा। क्योंकि मैं यह सिद्धान्त जानता था कि जो पहली चोट करता है, वह आधी बाजी जीत लेता है।

''जो सोचा, वही किया। मैंने उछलकर उसके मुख पर जोर का घूसा मारा, परन्तु वह जाकर ईंट की दीवार पर लगा और मेरा सिर भी दीवार से टकरा गया। मैं जोर से चिल्ला कर गिर पड़ा और बेहोश हो गया। जब होश लौटा, तो देखा कि डॉक्टर मरहम-पट्टी कर रहे हैं, माँ रो रही है और दो-तीन पड़ोसी खड़े होकर देख रहे हैं।

''बात क्या है – यह मैं उस समय जरा भी नहीं समझ सका। केवल इतना ही याद आया कि मेरा घूसा दीवार को लगा था और सिर भी जोर से टकरा गया था। नर्वस ब्रेकडाउन (स्नायविक धक्के) के कारण तीन-चार दिन तो बिस्तर पर पड़ा रहा, बुखार भी चढ़ा हुआ था। माँ का विश्वास था कि मुझे भूत ने मारा है। पड़ोसियों का भी यही मत था। निकट के बगीचे में नवाब लोगों की कबरें भी हैं। माँ ने झाड़-फूँक, ग्रह-शान्ति सब कुछ कराया। परन्तु मैं बिल्कुल भी नहीं समझ पा रहा था कि बात क्या हुई !

''पिछली रात को मैं चुपचाप बाहर निकला और उसी गली के मोड़ पर उस स्थान को देखने गया। भूत का भय तो मेरे मन में कभी रहा ही नहीं। मैं जाकर उस स्थान को अच्छी तरह से देखता रहा। उसके बाद घटनावाले दिन जिस प्रकार गली में घुसा था, उसी प्रकार वहाँ खड़े होते ही देखा – एक काला विराटकाय पुरुष आक्रमण की मुद्रा में खड़ा है। मेरे पीछे ही लैम्पपोस्ट था। इस कारण मेरी अपनी छाया ही उस प्रकार दीवार पर पड़ रही थी। तब मैंने विभिन्न मुद्राएँ करके उसे देखा। इसके बाद मैं घर गया और माँ तथा पड़ोसियों को लाकर उसे दिखाया, ताकि उन लोगों के मन से भूत का भय चला जाय। माँ यह जानकर आश्वस्त हुई कि वह भूत का मारा हुआ नहीं है। यह जो भ्रान्ति हुई थी – भय तो मन

में था ही नहीं; और मैं भय से भागा भी तो नहीं था, बल्कि लड़ने गया था। यह क्या है?''

संन्यासी – ''भय न होने पर भी उपदेवताओं तथा उनके आचरण की बातें सुनी हुई रहती हैं। उनकी प्रतिक्रिया भी तो इस प्रकार की हो सकती है। ऐसी भ्रान्ति खतरनाक हो सकती है। यदि तुम दुर्बल होते, तो सम्भव है कि मृत्यु ही हो जाती।

अपनी छाया भूत ही बन जाती। सामान्यत: प्रकाश और छाया की आकृति कितने ही प्रकार से तथा कितने ही रूपों में बनती रहती है – यह तो हम लोगों को ज्ञात नहीं रहता, इसीलिये इस तरह की भ्रान्ति होना स्वाभाविक है। तुम कॉलेज में यह घटना सबको बताकर चर्चा करो। इससे दर्शन-शास्त्र के विद्यार्थियों को यथार्थ लाभ होगा।

भूत-प्रेतों के विषय में यत्किंचित्

भूत-प्रेतों की बातें बहुत-से लोगों ने लिखी हैं और सभी लोग सुनते तथा बताते भी हैं। उनके भय से भयंकर रोग हो जाता है, मृत्यु तक हो सकती है। श्रीमाँ के एक शिष्य तथा संन्यासी के परिचित पात्र महाशय से सुनी थी।

उन्हें बड़े मास्टर कहा जाता था। उनका घर त्रिवेणी गाँव (हुगली) में था। एक बार वे अपने गाँव गये। वे थोड़ी-बहुत होम्योपैथी जानते थे और दवा का एक छोटा बाक्स वे सर्वदा अपने साथ रखते थे। वहाँ उनके पड़ोसी सहसा बीमार पड़ गये। लगातार खून का शौच तथा उल्टी हो रही थी। उनके लिये बुलावा आया। एलोपैथी डॉक्टर को बुलवाया गया था, परन्तु उनका घर थोड़ा दूर था और उस समय रात के एक-डेढ़ बजे थे। इन्होंने जाकर देखा, तो कुछ समझ में नहीं आ रहा था। इसके बाद – क्या क्या खाया है? आदि पूछते-पूछते उन्हें पता चला कि ये एक दूसरे गाँव में गये थे। वहाँ से लौटते समय अमुक स्थान पर एक विशाल इमली का पेड़ है, जिस पर बहुत-से लोगों ने अपने गले में रस्सी बाँधकर आत्महत्या की है। वहाँ पहुँचकर उन्हें थोड़ा भय लगा था और घर पहुँचते ही उस प्रकार खून की टट्टी, उल्टी आदि होने लगी। बोली बिल्कुल बन्द थी।

उन्हें एकोनाइट याद आया। एक गिलास पानी में उसकी चार बूँदें डालकर हर १०-१५ मिनट के अन्तर से वे उन्हें पिलाने लगे। एलोपैथिक डॉक्टर जब भोर के समय पहुँचे, तब तक रोगी स्वस्थ होकर निद्रामग्न हो चुका था। हैनिमैन ने लिखा है – भय के कारण यदि किसी की वैसी हालत हो, तो उसकी दवा है – एकोनाइट।

भूत के भय की एक अन्य रोचक घटना याद आ रही है। यह राजेन ब्रह्मचारी नामक लड़के से सुनने को मिली थी।

वह काठियावाड़ में भ्रमण कर रहा था। घटना पोरबन्दर में हुई थी। एक दिन रात के समय वह समुद्र का किनारा पकड़कर बहुत दूर निकल गया था। चाँदनी रात थी, इसलिये बड़ा अच्छा लग रहा था। परन्तु जब वह शहर की ओर लौटने लगा, तब तक रात काफी हो गयी थी, इसलिये उसने सोचा कि वहाँ के श्मशान में ही रात बितायेगा। वैष्णव बाबाजी लोगों के आश्रम में किसी को जगाकर परेशान नहीं करेगा। सीमेंट का बना हुआ एक काफी बड़ा और ऊँचा चबूतरा था। वह उसी के ऊपर जाकर सो गया। थोड़ी देर बाद उसने देखा कि सिर पर विशाल पगड़ी लगाये और हाथ में डण्डा लिये एक आदमी उसी ओर चला आ रहा है। उस चबूतरे के पास से होकर एक पगडण्डी गुजरती थी। उसे भय हुआ – निश्चय ही यह डकैत होगा, क्योंकि उस समय उधर चोर-डाकू ही उस प्रकार आ सकते थे। उसने अपनी बुद्धि लगायी और सीने के बल होकर धीरे-धीरे रास्ते के उल्टी दिशा में चबूतरे से नीचे उतर गया, ताकि वह व्यक्ति उसे देख न सके। परन्तु उसके उतरते समय राहगीर ने उसे देख लिया। वह काफी देर तक वहीं खड़ा-खड़ा उसे देखता रहा – इस प्रकार चबूतरे से यह कौन उतरा? इधर राजेन के मन में आया – बात क्या है, वह आदमी चला गया या अभी है? इसीलिये उसने धीरे-धीरे अपना सिर उठाकर उसे देखने का प्रयास किया। यह देखते ही वह आदमी सिर पर पाँव रखकर उल्टी दिशा में दौड़ पड़ा।

राजेन समझ गया कि यह डकैत नहीं है, इसलिये वह भी उसके पीछे दौड़ते हुए कहने लगा कि वह भूत नहीं, मनुष्य है। परन्तु वह आदमी जी-जान से दौड़ता हुआ बिल्कुल शहर के पास तक आ पहुँचा। पुलिस के एक सिपाही ने उसे रोककर पूछा कि क्यों इस प्रकार दौड़ रहा है? इसी बीच राजेन भी वहाँ जा पहुँचा। घटना को समझाकर कहने पर सिपाही ने हँसते हुए कहा – आपने ऐसा करके गलती की है, इससे वह आदमी मर भी सकता था।

❖ (क्रमशः) ❖
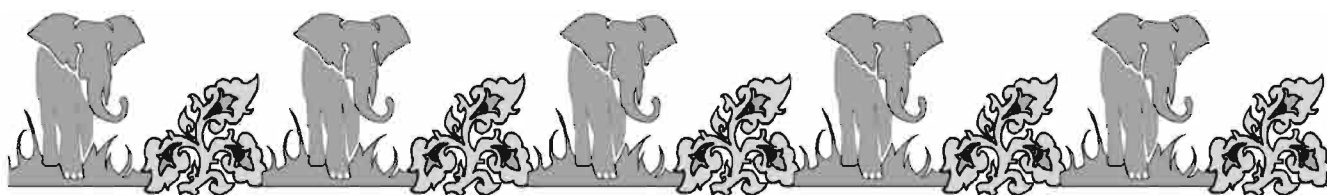
माया लोगे या मायाधीश

स्वामी सत्यरूपानन्द

बारह वर्ष तक वनवास के कष्ट भोगने के पश्चात पाण्डवों की कठिन परीक्षा का – अज्ञातवास का तेरहवाँ वर्ष भी समाप्त हो गया। महाराज विराट को महाराज पाण्डवों का परिचय मिला और तदुपरान्त उन्होंने सानन्द अपनी कन्या उत्तरा का विवाह अभिमन्यु के साथ निश्चित कर दिया।

इस विवाह में सम्मिलित होने के लिए भारत के विभिन्न अंचलों से अनेक राजा-महाराजा पधारे। भगवान कृष्ण भी अपने अग्रज बलराम के साथ इस उत्सव में भाग लेने आये। विवाह के दूसरे दिन सभी राजा-महाराजा महाराज विराट की सभा में उपस्थित थे। भगवान कृष्ण ने राजाओं की उस सभा में कौरवों के अन्याय तथा पाण्डवों के धर्म और न्याय-परायणता की बात सबके सामने रखी। विचार-विमर्श के पश्चात् यह निष्कर्ष निकला कि कौरवों के अन्याय को रोकने का युद्ध के अतिरिक्त और कोई रास्ता नहीं है। यह निश्चित हो जाने के पश्चात् यह भी तय हुआ कि पाण्डव अपने पक्ष से युद्ध का निमन्त्रण लेकर विभिन्न राजाओं के पास दूत भेजें। विवाहोत्सव की समाप्ति पर सभी राजा अपनी-अपनी राजधानी को लौट गये। भगवान कृष्ण भी वापस द्वारका चले आये।

इधर दुर्योधन को अपने गुप्तचरों से पाण्डवों के द्वारा सभी राजाओं के पास युद्ध का निमन्त्रण भेजे जाने का समाचार मिला। अत: दुर्योधन ने भी इसी उद्देश्य से चारों ओर अपने दूत भेज दिये। कौरव तथा पाण्डव दोनों यह जानते थे कि युद्ध में जय-पराजय इस बात पर निर्भर करेगा कि वासुदेव कृष्ण किसका पक्ष लेते हैं। श्रीकृष्ण जिनके पक्ष में होंगे, विजय उन्हीं की होगी।

उस युग में क्षत्रिय राजाओं के बीच ऐसी प्रथा थी कि जब कभी युद्ध होता, तो दोनों पक्षों में से जो भी अपनी ओर से युद्ध करने का निमन्त्रण पहले भेजता, निमन्त्रण पाने वाले राजा को उसी पक्ष की ओर से युद्ध करना पड़ता था, फिर विपक्षी चाहे उसका मित्र या सम्बन्धी ही क्यों न हो।

वासुदेव कृष्ण अपने काल के एक अत्यन्त महत्वपूर्ण व्यक्ति थे और साथ ही वे पाण्डवों के प्रिय सखा, हितैषी तथा मार्गदर्शक थे। अत: युधिष्ठिर ने अर्जुन से कहा कि वे स्वयं ही जाकर कृष्ण को युद्ध में साथ देने का अनुरोध करें।

उधर दुर्योधन भी यह जानता था कि पाण्डव स्वयं कृष्ण के पास निमन्त्रण देने जायेंगे। अत: उसने भी स्वयं कृष्ण के पास युद्ध का निमन्त्रण लेकर जाने का निश्चय किया। इधर से अर्जुन और उधर से दुर्योधन दोनों द्वारका की ओर चल पड़े। संयोगवश दोनों एक ही साथ द्वारका पहुँचे। उस समय भगवान कृष्ण सो रहे थे। पहले दुर्योधन ने उनके शयन-कक्ष में प्रवेश किया। उसने देखा कि कृष्ण अभी सो रहे हैं और उनके सिरहाने की ओर एक सुन्दर सिंहासन रखा है। वह उसी पर बैठ गया। अर्जुन ने भी शयन-कक्ष में प्रवेश किया। भगवान कृष्ण को सोते देखकर वह हाथ जोड़कर भगवान के चरणों की ओर खड़ा हो गया। दोनों ही उनके जागने की प्रतीक्षा करने लगे।

थोड़ी देर बाद भगवान की नींद खुली। सर्वप्रथम उनकी दृष्टि अर्जुन पर पड़ी। उन्होंने देखा कि अर्जुन बद्धाञ्जलि-विनम्र भाव से सामने खड़ा है। इसके पश्चात् उनकी दृष्टि दुर्योधन पर गयी। भगवान ने दोनों का उचित आदर-सत्कार किया तथा उनके आगमन का कारण पूछा।

उत्तर दुर्योधन ने ही दिया। भोगवाद, स्वार्थ और अहंकार मनुष्य को कितना अविवेकी और मदान्ध कर देता है, दुर्योधन का भगवान को दिया गया उत्तर इसी का एक ज्वलन्त उदाहरण है। वह गया तो था भगवान कृष्ण से सहायता की भिक्षा माँगने। किन्तु जब भगवान से सहायता की बात कहता है तब उनसे याचना न कर उनके सामने जो प्रस्ताव रखता है उसमें उपदेश और अधिकार का स्वर है। वह कहता है –

भवान् साह्यं मम दातुम् इहार्हसि – आप मुझे ही सहायता देने योग्य हैं। अर्थात् आपके लिए यही उचित है कि आप मुझे ही सहायता दें। इतना ही नहीं वह भगवान को यह भी स्मरण करा देना चाहता है कि श्रेष्ठ पुरुष अपने पूर्व के श्रेष्ठ पुरुषों के आचरण का ही अनुसरण करते हैं, अत: उन्हें भी वही करना उचित है – **पूर्व चाभिगतं सन्तो भजन्ते पूर्वसारिण:** – पूर्व पुरुषों का अनुसरण करने वाले श्रेष्ठ पुरुष पहले आये हुए प्रार्थी की ही सहायता करते हैं। अर्थात् यदि आप मेरी सहायता नहीं करते तो आप श्रेष्ठ पुरुष नहीं हैं। इतना ही नहीं, वह भगवान से आगे कहता है – **सद्वृत्तम् अनुपालय** – आप श्रेष्ठ पुरुषों के आचरण का ही पालन करें।

प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में अर्जुन और दुर्योधन दोनों विद्यमान हैं। साधारण व्यक्ति में दुर्योधन ही प्रबल दीख पड़ता है। हमारा अहंकार और स्वार्थ ही दुर्योधन है। वह हमें मदान्ध बना रखता है। एक तो बिना स्वार्थ या मतलब के हम भगवान से प्रार्थना नहीं करते और जब करते भी हैं, तो अधिकार के रूप में उनके सामने प्रस्ताव रखते हैं और यह

चाहते हैं कि हम जैसा चाहे भगवान वैसा ही कर दें। यदि वैसा नहीं हुआ, तो भगवान के प्रति हमारी श्रद्धा ही चली जाती है। फिर हम भगवान को भी तुच्छ समझने लगते हैं।

भगवान कृष्ण ने निर्विकार भाव से दुर्योधन की बातें सुनीं। और तब कहा – राजन्! निस्संदेह आप पहले आये हैं। किन्तु जागने पर मैंने अर्जुन को ही पहले देखा। अत: मैं सहायता तो आप दोनों की ही करूँगा, किन्तु शास्त्र कहते हैं कि जो छोटा है उसे उसकी अभीष्ट वस्तु पहले देनी चाहिए। अर्जुन आपसे छोटा है, अत: उसका यह प्रथम अधिकार है कि वह जो चाहे मुझसे माँग ले। किन्तु मेरी एक शर्त है – एक ओर दस करोड़ वीर यादवों की मेरी नारायणी सेना रहेगी तथा दूसरी ओर मैं अकेला। किन्तु मैं न तो शस्त्र धारण करूँगा और न ही युद्ध करूँगा। फिर अर्जुन की ओर देखकर उन्होंने कहा, "हे पार्थ! छोटे होने के नाते तुम्हारा ही पहला अधिकार है, अत: तुम मुझ निशस्त्र युद्धविरत कृष्ण तथा मेरी अजेय नारायणी सेना में से किसी एक को माँग लो।"

भगवान का यह प्रस्ताव सुन कर अर्जुन ने बिना किसी द्विधा के आनन्दपूर्वक निशस्त्र युद्धविरत भगवान को ही अपने पक्षधर के रूप में चुन लिया। इस पर दुर्योधन को यह सोचकर बड़ा ही आनन्द हुआ कि चलो अच्छा ही हुआ! कृष्ण अपनी ही चाल से ठगे गये – **कृष्णं चापहृतं ज्ञात्वा सम्प्राप परमां मुदम्**। और तब उसने आनन्दपूर्वक भगवान से उनकी नारायणी सेना माँग ली। उसके मन में यह निश्चय ही हो गया कि अब युद्ध में मेरी विजय सुनिश्चित है।

महाभारत के इस छोटे से प्रसंग के माध्यम से साधक-जीवन के अमूल्य आध्यात्मिक तत्त्वों की ओर संकेत किया गया है। पृथ्वी पर मनुष्य का जीवन एक अविरल संग्राम ही तो है। अपनी सफलता के लिये अपनी रक्षा के लिये और यहाँ तक कि अपने अस्तित्व के लिये भी मनुष्य को निरन्तर संघर्ष करना पड़ता है, युद्ध करना पड़ता है। मनुष्य चाहे जितना सबल, समर्थ और सम्पन्न क्यों न हो, जीवन संग्राम में अन्तिम विजय उसे भगवान की सहायता और कृपा के बिना नहीं मिल सकती। दुर्योधन का जीवन इस तथ्य का एक ज्वलन्त प्रमाण है। उसकी यह मान्यता थी कि जीवन में सफलता केवल भौतिक साधनों तथा भौतिक शक्तियों से ही मिलती है। यदि किसी के पास बाहुबल, धनबल और जनबल हो, तो वह भगवान को भी जीत सकता है। यही दम्भपूर्ण मान्यता उसके जीवन का दर्शन था। इसी मान्यता के आधार पर उसने अपने जीवन की सारी योजनायें बनाई थीं तथा अपने कर्मों और व्यवहारों को परिचालित किया था। किन्तु उसका परिणाम क्या हुआ यह सर्वविदित है।

शयन-कक्ष में दुर्योधन और अर्जुन दोनों ने ही भगवान को सोते हुए पाया था। किन्तु दुर्योधन भगवान को सोता देखकर उनके सिरहाने की ओर स्थित एक श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठ गया तथा उनके जागने की प्रतीक्षा करने लगा। भगवान कृष्ण के ही शयन कक्ष में उनके सिर की ओर एक श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठ जाने का तात्पर्य क्या है? तात्पर्य यह है कि कृष्ण, मैं भी आप से कम नहीं हूँ। आपके सिरहाने रखे श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठने का मुझे भी अधिकार है। मैं भी आपके बराबर ही हूँ। संसार के सभी दम्भी और अहंकारियों का यही जीवन-दर्शन होता है कि हम भी किसी से कम नहीं हैं। अपने इस अहंकार के कारण ही वे लोग अपने से ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, चरित्र -वान गुरुजनों की भी अवहेलना और अपमान कर बैठते हैं।

अल्पाधिक मात्रा में यह अहंकार सभी साधकों के भीतर रहता है। साधक को सतत् सावधान रहकर यह देखना पड़ता है कि यह अहंकार कहीं उस पर हावी तो नहीं हो रहा है। उसे अविवेकी और मदान्ध तो नहीं कर रहा है। और यदि कभी साधक को ऐसा प्रतीत हो तो उसे अर्जुन के पथ का अवलम्बन करना चाहिए।

दूसरी ओर अर्जुन का व्यवहार क्या है? उसने भी भगवान को शयन-कक्ष में सोते हुए देखा। किन्तु उसने क्या किया? भगवान को सोते देख अर्जुन हाथ जोड़कर नम्रतापूर्वक भगवान के चरणों की ओर खड़ा रहा। यही समर्पण है। अहंकार का विसर्जन है। अर्जुन भगवान की महिमा और गरिमा से परिचित था। वह यह भलीभाँति जानता था कि भगवान की शक्ति के आगे विश्व की अन्य सभी शक्तियाँ नगण्य हैं, वह जानता था कि भगवान सर्वशक्तिमान हैं। उनकी इच्छा मात्र से मनुष्य संसार के सभी शत्रुओं को पराजित कर सकता है। इतना ही क्यों, उसे जीवन का परम श्रेय मोक्ष तक प्राप्त हो सकता है।

यह समर्पण और विश्वास ही अर्जुन का जीवन-दर्शन था। वह यह भलीभाँति जानता था कि भगवान की कृपा और सहायता के बिना संसार की बड़ी-से-बड़ी सेना भी उसे विजय नहीं प्राप्त करा सकती, उसके दुखों को दूर नहीं कर सकती। किन्तु यदि भगवान उसके साथ हों, उनकी कृपा हो तो वह अकेले ही संसार के प्रबलतम शत्रु पर भी अनायास ही विजय प्राप्त कर सकता है। इसी दृढ़ विश्वास के कारण उसने नि:शस्त्र युद्धविरत भगवान को अपने पक्षधर के रूप में चुना। दुर्योधन के सेना लेकर लौट जाने के पश्चात् भगवान ने जब अर्जुन से पूछा – हे पार्थ तुमने मुझ अकेले निहत्थे को क्यों चुना? तब अर्जुन ने भगवान को उत्तर भी वही दिया था – **भवान् समर्थस्तान् सर्वान् निहन्तुं नात्रसंशयः** – आप अकेले ही उन सब का वध करने में समर्थ हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं।

भगवान के अपने पक्ष में चुनने के पश्चात् दूसरा महत्वपूर्ण

कार्य जो अर्जुन ने किया, वह यह था कि उसने भगवान से प्रार्थना की कि प्रभो, आप मेरे सारथी हो जाइए। और भगवान ने कृपापूर्वक उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली।

साधक और भक्त के जीवन दर्शन का दूसरा महत्वपूर्ण भाग यह है कि विश्वास के पश्चात् वह अपने जीवन-संचालन का, अपने योगक्षेम का सारा भार ईश्वर के हाथों में सौंप दे। विश्वास तथा समर्पण के पश्चात् भक्त का जीवन पूर्णत: भगवान द्वारा ही संचालित हो। भगवान ही उसके जीवन रथ के सारथी हों, तभी विश्वास और समर्पण फलीभूत होते हैं। तभी वह मनुष्य जीवन के परम श्रेय – मोक्ष का अधिकारी होता है। अर्जुन का जीवन इसी का उदाहरण है।

किन्तु भगवान को अपना पक्षधर बनाने के लिए उनकी कृपा और सहायता प्राप्त करने के लिये मनुष्य को कठिन परीक्षा देनी पड़ती है। निर्णायक चुनाव करना पड़ता है। जीवन की कठिन परीक्षा के समय भगवान और उनका ऐश्वर्य, श्रेय, और प्रेय, योग और भोग, माया और मायाधीश के बीच चयन करना पड़ता है। इनमें से किसी एक का अन्तिम रूप से वरण करना होता है। इस चुनाव पर ही मनुष्य के जीवन की सफलता-असफलता अथवा जय-पराजय निर्भर करती है। यह परीक्षा निस्सन्देह कठिन होती है। किन्तु जीवन में भी महान् उपलब्धि के लिये परीक्षा तो देनी ही पड़ती है। अर्जुन को भी यह कठिन परीक्षा देनी पड़ी थी। आज भी जिन्होंने जीवन में भगवान की कृपा पायी है, जिनके योग-क्षेम का भार भगवान ने ग्रहण किया है, उन सभी को यह परीक्षा देनी पड़ी है। उन्हें प्रेय को त्यागकर श्रेय का तथा भोग को त्याकर योग का वरण करना पड़ा है।

भगवान ने जब अर्जुन के सामने यह प्रस्ताव रखा था कि तुम्हें मुझ निशस्त्र युद्धविरत कृष्ण तथा मेरी विशाल नारायणी सेना में से किसी एक का ही चुनाव करना होगा, तब उनका तात्पर्य यही था कि तुम्हें भगवान तथा उनके ऐश्वर्य में से किसी एक का निर्णायक चुनाव कर लेना होगा। दूसरे शब्दों में 'तुम मुझे चाहते हो या मेरी माया को?'

हम सभी के जीवन में कभी-न-कभी ऐसा प्रसंग आता ही है, जब हमें यह चुनाव करना पड़ता है कि हम माया लें या मायाधीश को। जो बिरले भाग्यवान माया को त्यागकर मायाधीश का वरण करते हैं, उनकी शरण में जाते हैं, उन्हीं का जीवन धन्य होता है – शेष सभी तो जन्म-मृत्यु के चक्र में घूमने वाले माया के दास मात्र हैं। ❖ **(समाप्त)** ❖
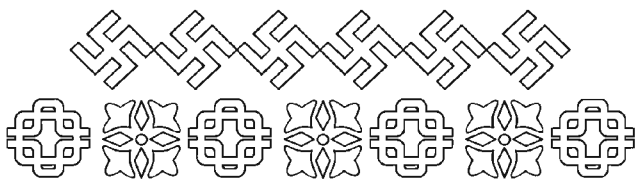
उठ, बढ़-आगे चल रे !

भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश'

क्यों मन मारे बैठा है मन !
उठ, बढ़-आगे चल रे !
मानव का तन मिला तुझे,
तो तू दीपक-सम जल रे !!

सब जीवों में सबसे सुन्दर
जीवन तुझे मिला है,
ईश्वर का वरदान स्वयं ही
बन सौभाग्य खिला है,
मोह-पंक से उठ जल पर तू
जलज-समान निकल रे,
उठ, बढ़-आगे चल रे !!

उद्गम से चल, विघ्नों को दल
अविकल चलती जाती,
प्रियतम सागर की बाहों में
सरिता स्वयं समाती।
बाधा-व्यूहों को विदार कर
तू बढ़ सँभल-सँभल रे,
उठ, बढ़-आगे चल रे !!

बिना किये पुरुषार्थ जगत् में
जीना भी, क्या जीना,
बिना परिश्रम किये अमृत भी
पीना, है क्या पीना?
करके केवल भाग्य-भरोसा
नहीं स्वयं को छल रे,
उठ, बढ़-आगे चल रे !!

सत्कर्मों के पारस को छू
जीवन बनता सोना,
स्नेहिल सौरभ से हो जाता
सोना अधिक सलोना
सदा सत्य-शिव-सुन्दर के ही
साँचे में तू ढल रे,
उठ, बढ़-आगे चल रे !!

बिना किये उद्योग सिंह के
मुख में मृग न समाते,
उद्योगी जन ही जीवन में
मन का सुमन खिलाते।
हिम गलकर गतिमय हो जाता,
तू भी हिम-सम गल रे,
उठ, बढ़-आगे चल रे !!

जीवन का समुचित उपयोग

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी ने आकाशवाणी के चिन्तन कार्यक्रम के लिये विविध विषयों पर अनेक विचारोत्तेजक लेख लिखे थे, जो उसके विभिन्न केन्द्रों द्वारा प्रसारित किये गये तथा लोकप्रिय भी हुए। प्रस्तुत लेख आकाशवाणी, रायपुर से साभार गृहीत हुआ है। – सं.)

हमारे जीवन का समुचित उपयोग तब होता है, जब उसे हम दूसरों के काम में लगाते हैं। अपने लिए तो पशु भी जीते हैं। केवल मनुष्य में ही ऐसी क्षमता है कि वह चाहे तो दूसरों के लिए जी सकता है। स्वामी विवेकानन्द कहते थे कि जो जितनी मात्रा में दूसरों के लिए जीता है, उसमें मानवता उतनी ही मात्रा में प्रकट होती है। स्वार्थ का नाश ही मानवता को प्रकट करता है।

हम जो उपासना आदि करते हैं, वह भी इसीलिए कि हम स्वार्थ के दोष से मुक्त हों और दूसरों के प्रति सदैव भला करें। एक ओर तो हम पूजा-पाठ करते हों, देवस्थानों के दर्शन हेतु जाते हों और दूसरी ओर अपने स्वार्थ की संकीर्ण सीमा के भीतर घिरे हों, तो हमारी ऐसी उपासना आत्मशुद्धि के लिए न होकर व्यावसायिक ही अधिक होती है। हम ईश्वर की प्रसन्नता तब प्राप्त करते हैं, जब हम उसे मात्र मन्दिर की मूर्ति में न देखकर, बाहर संसार में पीड़ितों और दुखियारों के भीतर देखते हैं तथा उनकी पीड़ा को यथाशक्ति दूर करने की चेष्टा करते हैं। ईश्वर को मात्र अपनी स्तुति या चापलूसी पसन्द नहीं।

एक धनी व्यक्ति का एक बगीचा था, जिसमें दो माली काम करते थे। एक माली बड़ा सुस्त और कमजोर था, परन्तु जब कभी वह अपने मालिक को आते देखता, झट उठकर खड़ा हो जाता और हाथ जोड़कर कहता, "मेरे स्वामी का मुख कैसा सुन्दर है!" और ऐसा कह उसके सम्मुख नाचने लगता। दूसरा माली ज्यादा बातचीत नहीं करता था, उसे तो बस अपने काम से काम था। वह बड़ी मेहनत से बगीचे में तरह-तरह के फल-तरकारी पैदा करके वह सब स्वयं अपने सिर पर रखकर मालिक के घर पहुँचाता था, यद्यपि मालिक का घर बहुत दूर था। अब इन दो मालियों में से मालिक किसको अधिक चाहेगा? बस, ठीक इसी प्रकार यह संसार एक बगीचा है, जिसके मालिक भगवान हैं। यहाँ भी दो प्रकार के माली हैं – एक तो वह, जो अकर्मण्य, सुस्त और ढोंगी है तथा जो भगवान के सुन्दर नेत्र, नासिका तथा अंगों की प्रशंसा करता रहता है और दूसरा वह है, जो भगवान की सन्तानों की, दीन-दुखी प्राणियों की और भगवान की सृष्टि की चिन्ता करता है। इन दो प्रकार के लोगों में से कौन भगवान को अधिक प्यारा होगा? निश्चय ही वह, जो उनकी सन्तानों की सेवा करता है। जो व्यक्ति भगवान की सेवा करना चाहता है, उसे उनकी सन्तानों की पहले सेवा करनी चाहिए। कहा भी तो है कि जो भगवान के दासों की सेवा करता है, वही भगवान का सर्वश्रेष्ठ दास है।

जीवन का समुचित उपयोग इसमें है कि इसे यथासम्भव शुद्ध रखा जाय और अपनी सामर्थ्य के अनुसार अभाव-पीड़ितों की सहायता की जाय। इससे चित्त की मलिनता दूर होती है। चित्त के शुद्ध होने पर हृदय के भीतर वास करने वाले भगवान प्रकट हो जाते हैं।

इसे यों समझें कि यदि शीशे पर धूल पड़ी है, तो उसमें हम अपना प्रतिबिम्ब नहीं देख सकते। धूल के साफ होने पर प्रतिबिम्ब साफ झलकने लगता है। इसी प्रकार अज्ञान और अज्ञान से उत्पन्न स्वार्थपरता हमारे हृदयरूपी शीशे पर धूल की भाँति जमा हो गये हैं। जो मनुष्य यह सोचता रहता है कि "मैं ही पहले खा लूँ, मुझे ही सबसे अधिक धन मिल जाय, मैं ही सर्वस्व का अधिकारी बन जाऊँ" – वह स्वार्थी है। नि:स्वार्थी व्यक्ति तो कहता है, "मुझे अपनी चिन्ता नहीं है, मुझे स्वर्ग जाने की भी आकांक्षा नहीं है। यदि मेरे नरक में जाने से किसी को लाभ हो सकता है, तो मैं उसके लिए भी तैयार हूँ।" यह नि:स्वार्थता ही धर्म की कसौटी है। जिसमें जितनी अधिक नि:स्वार्थता है, वह उतना ही आध्यात्मिक है तथा भगवान के उतना ही समीप, भले ही वह अज्ञेयवादी हो या नास्तिक। ऐसा व्यक्ति ही अपने जीवन का समुचित उपयोग करता है। इसके विपरीत, यदि व्यक्ति स्वार्थी है, तो चाहे उसने संसार के सब मन्दिरों के ही दर्शन क्यों न किये हों, सारे तीर्थों में ही वह क्यों न गया हो, पर वह भगवान से बहुत दूर है और कहना होगा कि उसने जीवन का समुचित उपयोग करना सीखा नहीं। ❑❑❑

मनोमोहन मित्र एवं रामचन्द्र दत्त

स्वामी प्रभानन्द

(श्रीरामकृष्ण के जीवन-काल में अनेक नर-नारी उनके सम्पर्क में आये और क्रमश: उनके अनुरागी, भक्त या शिष्य बने। विद्वान् लेखक रामकृष्ण मठ तथा मिशन के महासचिव हैं। आपने अनेक प्रामाणिक ग्रन्थों के आधार पर कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के साथ उनकी प्रारम्भिक मुलाकातों का वर्णन किया है। इस शृंखला के अनेक लेखों के अनुवाद १९७८ से १९८८ के दौरान विवेक-ज्योति में प्रकाशित हुए थे। वर्तमान लेख First Meetings with Sri Ramakrishna नामक अंग्रेजी ग्रन्थ से स्वामी श्रीकरानन्द जी द्वारा अनुवादित हुआ है। – सं.)

भयंकर बाढ़ से पृथ्वी आप्लावित हो गयी थी। वह अपने साथ सब कुछ बहाये ले जा रही थी। वे भी उस बहाव में छाती से बँधे एक काठ के तख्ते के सहारे इधर-उधर उतरा रहे थे। थोड़ी देर के लिए वे एक पुल की कमानी के नीचे रुके। सहसा उनके मन में भय समा गया। वे चीत्कार कर उठे – "क्या इस संसार में कोई भी जीवित नहीं बचा?"

"नहीं, कोई भी नहीं बचा" – उन्हें उत्तर मिला।

"मेरी पत्नी, माँ, बच्चियाँ – क्या सभी मर गये?" – वे चिल्लाये।

"सब मर गये" – उन्हें तत्काल उत्तर मिला।

"तो क्या कोई भी जीवित नहीं बचा?"

"नहीं, सिवाय उनके, जो ईश्वर में विश्वास रखते हैं।"

दु:ख से उनका दम घुटने को ही था कि सहसा वे जोरों से चिल्ला उठे – इतने जोरों से कि उसकी पत्नी और माँ की निद्रा टूट गयी और वे उनसे चिल्लाने का कारण पूछने लगीं। वे मात्र इतना ही कह सके, "तुम लोग कौन हो? मेरी माँ और पत्नी तो मर चुकी हैं।" सुनकर वे हक्की-बक्की रह गयी।

वे एक विचित्र सपना देख रहे थे और सपना इतना स्पष्ट था कि उन्होंने उसे, न केवल सच मान लिया था, अपितु उसकी विचित्रता और धक्के से वे अभिभूत भी हो उठे थे।[१] यद्यपि वह स्वप्न मात्र था, तो भी उसके अन्तर्मन में आया कि इसका उनके लिए कोई अर्थ अवश्य है। यह एक रविवार की, भोर के समय की घटना रही होगी। कोन्नगर के भुवनमोहन मित्र के पुत्र मनोमोहन मित्र (१८५१-१९०३) उस स्वप्न के द्रष्टा थे।

मनोमोहन बंगाल सचिवालय के सन्दर्भ-विभाग में कार्यरत थे। उन दिनों हिन्दू धर्म पर जो आक्षेप लगाये जाते थे, उनसे वे स्वयं को अवगत रखते थे। ब्राह्मसमाज की ओर उनका रुझान था और सात महीने की कन्या की मृत्यु के बाद उनका यह रुझान और भी गहरा हो गया था।[२] उन्होंने ब्राह्म लोगों द्वारा गायी जानेवाली प्रार्थनाओं में सांत्वना पाने की चेष्टा की, परन्तु वे ब्राह्मधर्म के प्रति अपनी आस्था को अधिक दिनों तक टिकाये नहीं रख सके। उनके ममेरे भाई रामचन्द्र दत्त (१८५१-९९) एक केमिस्ट तथा चिकित्सक थे। वे संशयवादी थे और मनोमोहन के विश्वास के पक्ष में चुने हुए तर्कों का खण्डन कर देते थे। इसके फलस्वरूप मनोमोहन विश्वास और तर्क की विपरीत तरंगों के बीच फँस गये। तथापि उन दोनों की इस बौद्धिक जिज्ञासा ने, जिस अविश्वास से वे लोग ग्रस्त थे, उससे पार जाने में उनकी सहायता की थी।

रामचन्द्र दत्त के पिता नृसिंह प्रसाद दत्त एक निष्ठावान वैष्णव थे और घर में प्रतिदिन श्रीकृष्ण की उपासना करते थे। राम के छुटपन में ही उनके पिता ने दूसरी बार विवाह किया था। राम अपने पिता तथा सौतेली माँ के साथ रहते थे। वे अपनी सौतेली माँ से सन्तुष्ट न थे, अत: उनमें और पिता में कभी-कभी तकरार हो जाया करती। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, राम ईश्वर और धर्म के विषय में बड़े संशयवादी थे, इसलिए उन्हें मानसिक शान्ति नहीं मिल रही थी।

तभी परिवार के एक हादसे ने रामचन्द्र की ईश्वर में अश्रद्धा तथा उनके वैज्ञानिक दृष्टिकोण की नींव को ही उखाड़ फेंका और यही घटना उनके जीवन में एक नया मोड़ लानेवाली बन गयी। अपनी एक प्यारी कन्या की मृत्यु हो जाने पर उनके मन में बारम्बार वही प्राचीन प्रश्न उठने लगा – "क्या मनुष्य के भौतिक देह के नष्ट होने के बाद भी उसकी आत्मा रहती है?" उनका जड़वादी तर्क उन्हें ज्यादा दूर तक नहीं ले जा सका। काली-पूजा के दिन अपराह्न में जब उनका मस्तिष्क इस कठिन प्रश्न से परेशान था, तभी शीत ऋतु के सुहावने आकाश को देखकर उन्हें लगा कि उनके मस्तिष्क से चिन्ताओं के बादल भी छँट रहे हैं। वे स्वयं से पूछने लगे, "मैं क्या कर रहा हूँ? मैं कहाँ जा रहा हूँ? इस विस्तृत विश्व के सम्बन्ध में मैं जानता ही कितना हूँ? क्या मनुष्य का जीवन भी आसमान में तैरते बादलों के एक क्षुद्र टुकड़े जैसा ही नहीं है?" उन्होंने पुन: एक ऐसे दर्शन की खोज शुरू कर दी, जो जीवन का अर्थ समझा सके। यह खोज उन्हें केशवचन्द्र के व्याख्यानों तथा लेखों तक ले गयी और इससे उन्हें अन्य बातों के साथ ही दक्षिणेश्वर के सन्त श्रीरामकृष्ण के विषय में भी जानकारी मिली।

इसके बाद राम एक रविवार की सुबह सड़क पर टहल रहे थे, तभी उनकी एक योगाभ्यासी से भेंट हुई, जो उनके पूर्व-परिचित थे। राम ने उनके सामने अपनी समस्या रखी। योगी ने गम्भीर होकर उत्तर दिया कि उनका इलाज तभी सम्भव है, जब ईश्वर स्वयं उनके सामने 'चिकित्सक' के रूप में आएँ। राम के मन में एक विचार कौंध उठा – "क्यों न मैं दक्षिणेश्वर के

परमहंस के सामने अपना हृदय खोलकर रख दूँ।'' इससे उनमें आशा का संचार हुआ और हृदय में उत्साह जगा। वे अपने भाई मनोमोहन के घर की ओर बढ़ चले।[३]

इसी बीच केशव के समाचार-पत्र – 'सुलभ-समाचार' में छपे रिपोर्ट के माध्यम से मनोमोहन मित्र भी रामकृष्ण परमहंस के बारे में जान चुके थे। उनके मित्र प्राणकृष्ण दत्त कई बार परमहंस के पास जा चुके थे। मनोमोहन ने उनसे और भी अधिक विस्तार से परमहंस के बारे में सुना था।

अब रामचन्द्र ने मनोमोहन के सपने की बात सुनकर कहा, ''तुमने जो देखा है, वह सच है। वास्तव में सभी मनुष्य माया से मोहित हैं। सच्चे अर्थों में कोई भी जीवित नहीं है। सभी अचेतन रूप से जिये जा रहे हैं।'' मनोमोहन ने सुझाव दिया, ''हम लोग बहुत समय से दक्षिणेश्वर के परमहंस के बारे में सुन रहे हैं, परन्तु खेद की बात है कि अब तक हम लोग उनके दर्शन के लिए समय नहीं निकाल सके!''

''तो फिर आज ही क्यों न चलें'' – रामचन्द्र ने प्रस्ताव किया – ''आज छुट्टी का दिन भी है, अत: हम लोग जा सकते हैं।'' मनोमोहन ने भी अपनी सहमति जतायी।

१३ नवम्बर, १८७९ ई. का वह दिन एक रविवार था। दोनों भाइयों ने दक्षिणेश्वर जाने का निश्चय किया और जाकर स्वयं प्रत्यक्ष देखना चाहा कि वे कैसे परमहंस हैं। हुगली जिले के आँटपुर गाँव के गोपाल मित्र, दोनों के ही मित्र थे। वे उन्हें साथ लेकर किराये की नौका में चल पड़े। दक्षिणेश्वर मन्दिर पहुँचकर वे इस आशा से बगीचे में घूमने लगे कि कोई अंगों में भभूत लगाये जटा-जूटधारी साधु दीख जाय। उन्हें ऐसा कोई नहीं मिला। अन्त में, किसी ने उन्हें एक कमरे की ओर जाने को कहा। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि कमरे का दरवाजा बन्द है और बाहर बरामदे में कुछ पुलिसवाले बैठे हैं।

चूँकि दरवाजा बन्द था और शिष्टता के नाते किसी बन्द दरवाजे को धक्का देना शोभा नहीं देता, अत: वे लोग गंगा के घाट की ओर लौट गये। अस्तु, किसी ने उन लोगों से दरवाजे को खटखटा लेने को कहा। सलाह मानकर वे पुन: उस कमरे की ओर गये और दरवाजे पर दस्तक दी। वह खुला और एक साधारण से दिखनेवाले व्यक्ति ने झुकते हुए 'नारायण' कहकर उनका अभिवादन किया।[४] उन लोगों ने अपना सिर हिलाकर उसका प्रत्युत्तर दिया। कमरे में स्वागत करते हुए उस व्यक्ति ने उन्हें उसी बिस्तर पर बैठने के लिए कहा, जिस पर वह बैठा था। उसने पूछा, ''आप लोग कहाँ से आ रहे हैं?'' उन लोगों ने अपना परिचय दिया। वह सरल शान्त दिखनेवाला व्यक्ति अस्त-व्यस्त भाव से बँधी हुई धोती पहने हुए था, जिसका एक छोर उसके कन्धे पर पड़ा हुआ था। उन्होंने देखा – एक अन्य ऊँचा तथा बलिष्ठ व्यक्ति फर्श पर बिस्तर में लेटा हुआ है।

उन लोगों का स्वागत करनेवाले श्रीरामकृष्ण उस लेटे हुए व्यक्ति से कहने लगे, ''देख तो हृदू, ये लोग कितने शान्त और चुप हैं। ये ब्राह्म-समाज के सदस्य नहीं हैं।'' इस पर मनोमोहन ने आपत्ति करते हुए कहा कि वे अपने बचपन से ब्राह्म-समाज में जाते रहे हैं और मूर्तिपूजा को हेय दृष्टि से देखते हैं। इस पर धीरे से उत्तर मिला, ''परन्तु तुम किसी दल या सम्प्रदाय के नहीं हो, मैं यही कह रहा था।'' श्रीरामकृष्ण ने आगे कहा, ''जिस प्रकार मिट्टी का बना हुआ सीताफल मन में असली सीताफल की स्मृति ला देता है, उसी प्रकार देवी-देवताओं की मूर्तियाँ ईश्वर की वास्तविक लीला के विचार जगा देती हैं। ईश्वर सर्वशक्तिमान हैं; उनके लिए सब सम्भव है।''

पहली ही दृष्टि में रामचन्द्र को भीतर से लगने लगा कि श्रीरामकृष्ण उनके अपने हैं। वे एकटक श्रीरामकृष्ण को निहार रहे थे और जितना ही अधिक देखते, उतना ही अपने हृदय में आनन्द का अनुभव कर रहे थे। श्रीरामकृष्ण ने भी अपनी कभी न चूकनेवाली दृष्टि से उन आगन्तुकों को अपने दो अन्तरंग भक्तों के रूप में पहचान लिया था।

सहसा उन्होंने रामचन्द्र की ओर देखते हुए कहा, ''क्या तुम डाक्टर नहीं हो? (हृदयराम की ओर इंगित कर) यह बुखार से पीड़ित है। क्या तुम इसकी जाँच कर दोगे?'' रामचन्द्र अपने बारे में इस अप्रत्याशित खुलासे पर चकित रह गये, क्योंकि उन्होंने श्रीरामकृष्ण को बताया नहीं था कि वे चिकित्सक हैं। अस्तु, रामचन्द्र ने मरीज की परीक्षा की और बताया कि हृदयराम का बुखार मामूली है। इसके बाद श्रीरामकृष्ण ने रामचन्द्र से पूछा, ''अच्छा, मैं जो भी खाता हूँ, वह किधर जाता है?'' रामचन्द्र ने पेट की ओर इशारा किया। श्रीरामकृष्ण ने अपने पेट के निचले दाहिने भाग को दिखाकर कहा, ''परन्तु मुझमें तो भोजन यहाँ नीचे आ जाता है।'' वे लोग यह सुनकर चकित हुए, पर उसकी सत्यता पर विश्वास न कर सके। जो हो, बाद में रामचन्द्र ने भौतिक जाँच से पुष्टि कर ली कि श्रीरामकृष्ण ठीक ही कह रहे थे कि भोजन या पेय सीधा उनके पेट के दाहिनी ओर नीचे चला जाता था।[५]

थोड़ी देर बाद उनमें से एक ने पूछा, ''ईश्वर क्या सचमुच है? यदि ऐसा है, तो क्या उसे देखा जा सकता है? और यदि वह दीख सकता है, तो क्या इसी जन्म में उसके दर्शन हो सकते हैं?'' उत्तर में मधुर शब्दों का एक प्रवाह उमड़ आया – ''ईश्वर सचमुच हैं। तुम लोग दिन में तारे नहीं देखते, परन्तु इसका अर्थ यह तो नहीं कि वे नहीं हैं। देखो, दूध में मक्खन है; पर क्या कोई देखने मात्र से उसे ढूँढ़ सकता है? मक्खन पाने के लिए दूध को सूर्योदय के पहले शान्त और ठण्डे स्थान में मथना पड़ेगा। यदि तुम तालाब में मछलियाँ पकड़ना चाहते हो, तो पहले जिन्होंने उसमें मछलियाँ पकड़ी हैं, उनसे यह जान लेना होगा कि उसमें किस प्रकार की मछलियाँ उपलब्ध हैं और कौन-सी बंसी उपयोग में लानी होगी। इसी प्रकार तुमको

ईश्वर के बारे में पूछताछ करनी चाहिए। मछली पकड़नेवाले को तालाब में बंसी लगाकर धैर्यपूर्वक लम्बे समय तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है, जब तक कि डोर में कोई हलचल न हो। यह हलचल ही उसे बता देती है कि तालाब में मछली है। धीरे-धीरे जब चारा नीचे पानी में डूब जाता है, तब वह एक झटके में मछली को जमीन के ऊपर खींच लेता है। इसी प्रकार सिर्फ इच्छामात्र से तुम ईश्वर को नहीं देख सकते; तुम्हें कुछ साधनाएँ करनी पड़ेंगी। तुम्हें साधु के वचनों में विश्वास रखकर, उस मछली पकड़नेवाले काँटे की भाँति अपने मन को स्थिर रखना होगा। उसमें प्राणरूपी फन्दा बनाओ और उस फन्दे में भगवद्-भक्ति-रूपी चारे को बाँधकर तब तक बैठे प्रतीक्षा करो, जब तक ईश्वर-चिन्तन तुम्हारे चित्तरूपी सरोवर में हलचल नहीं उत्पन्न करता। इतना होने पर तुम ईश्वर का दर्शन पाकर धन्य हो जाओगे।''[६]

रामचन्द्र पक्के अज्ञेयवादी थे। मनोमोहन, यद्यपि ईश्वर के अस्तित्व में पूरा विश्वास रखते थे, परन्तु उनकी यह धारणा थी कि उसका कोई आकार नहीं हो सकता। ब्राह्म नेताओं से उन्होंने इस प्रकार के तर्क सुने थे। दोनों के मनोभाव भाँपकर श्रीरामकृष्ण बोले, ''वस्तुत: ईश्वर को कौन पाना चाहता है? कौन उन्हें जानना चाहता है? सभी इसी धारणा को लेकर चल रहे हैं कि उन्हें समझा नहीं जा सकता। यदि कोई ईश्वर के लिए व्याकुल होकर रोता है और रो-रोकर प्रार्थना करता हैं, 'प्रभो, कृपा करके अपने दर्शन से मुझको कृतार्थ करो', तो ईश्वर निश्चय ही उसके सामने प्रकट हो जाएँगे। क्या ईश्वर, जिनकी महिमा इतनी मोहक है, अदर्शनीय हो सकते हैं? जो भी चाहे, इसकी सत्यता को परख सकता है। यदि ईश्वर के दर्शन नहीं हो सकते, तो सारे शास्त्रों का कोई महत्त्व नहीं रह जायेगा। क्या तुम ऐसा मानते हो कि शास्त्रों की सारी बातें कपोल-कल्पित हैं और कलियुग के लोगों को ठगने के लिए उपन्यासों तथा नाटकों की भाँति गढ़ी गयी हैं?''[७] मनोमोहन ने सुझाया, ''माना कि आप जो कहते हैं वह सच है, पर क्या ईश्वर का साक्षात्कार इसी जन्म में किया जा सकता है?'' श्रीरामकृष्ण ने उत्तर दिया, ''जिस व्यक्ति की जैसी प्रेम-भावना होगी, वैसी ही उसे उपलब्धि होगी। विश्वास ही सबका मूल है।'' ऐसा कह वे अपने सुमधुर कण्ठ से एक भजन गाने लगे – (भावार्थ) –

जैसा होगा ध्यान मनुज का, प्रेम-भावना होगी वैसी।
जैसी होगी प्रेम-भावना, प्राप्ति मनुज की होगी वैसी ।।
पर विश्वास मूल है सबका।
यदि काली के चरणामृत-सर में मन पा जाये विश्राम।
तो फिर पूजा औ उपासना, यज्ञ-आहुतियों से क्या काम!!

श्रीरामकृष्ण ने आगे कहा, ''जितना ही कोई एक दिशा में आगे बढ़ता है, उतना ही वह विपरीत दिशा से दूर होता जाता है। यानी यदि तुम पूर्व की ओर दस कदम बढ़ाते हो, तो पहले वाला स्थान पश्चिम की ओर उतना ही पीछे छूट जाता है।''

परन्तु उन लोगों ने अपना तर्क नहीं छोड़ा, कहने लगे, ''जब तक ईश्वर के अस्तित्व के सम्बन्ध में कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं मिल जाता, तब तक हम लोगों के अविश्वासी मन में ईश्वर के प्रति विश्वास नहीं जम सकता।''

श्रीरामकृष्ण ने मुस्कुराते हुए कहा, ''टायफाइड का रोगी घड़े भर पानी पी जाना और बटलोई भर भात खा जाना चाहता है, परन्तु क्या चिकित्सक उसकी बातों पर कोई ध्यान देता है? क्या बुखार होते ही चिकित्सक एकदम कुनैन लेने के लिए कहता है? वह मरीज की दशा परखता है और जब देखता है कि बुखार एक-सा है, तब ठीक समय पर कुनैन लेने के लिए कहता है। वह मरीज की बातों पर ध्यान नहीं देता।''[८]

श्रीरामकृष्ण की सरल, किन्तु विश्वास उपजानेवाली बातों ने उन लोगों के हृदय को छू लिया। उनकी मधुर वाणी उन लोगों की अन्तरात्मा में गहराई से भिंद गयी। वस्तुत: उनकी बातें उन लोगों के हृदय में गूँजने लगीं। श्रीरामकृष्ण ने उन अमूर्त विचार-कणों को वाणी और रूप प्रदान किया था, जो अभी तक उनकी पकड़ से दूर थे। इससे पूर्व उन्होंने कभी भी ऐसा विश्वास जमा देनेवाला उपदेश नहीं सुना था। श्रीरामकृष्ण ने उन लोगों को इतनी आत्मीयता से स्वीकार किया कि उन्हें लगने लगा मानो वे लम्बे समय से उनसे परिचित हैं और उनके अपने ही हैं। दिन भर उनके सान्निध्य में बिताकर तीनों मित्र संध्या के पूर्व दक्षिणेश्वर से लौट गये।

इस भेंट ने रामचन्द्र और मनोमोहन के जीवन में एक नया अध्याय खोल दिया। अब श्रीरामकृष्ण की प्रेरणा ने, उनके जीवन से होकर प्रवाहित होते हुए, उसे पूरी तौर से अभिभूत कर लिया और इस प्रवाह में उनके बीते समय की सारी कटु स्मृतियाँ धुल गयीं। रामचन्द्र ने अपनी पुस्तक 'श्रीश्रीरामकृष्ण परमहंसदेवेर जीवनवृत्तान्त' में और मनोमोहन ने अपनी अधूरी पुस्तक 'आमार जीवनकथा' में बताया है कि श्रीरामकृष्ण के सम्पर्क में आने के बाद किस प्रकार उनके जीवन में क्रमश: एक महान् क्रान्ति घटित हुई थी।

अपने जीवन के इस आमूल परिवर्तन का वर्णन करते हुए राम लिखते हैं – ''जब हम ईश्वर की खोज में इधर-उधर भटक रहे थे – कभी ब्राह्म समाज के प्रार्थना-मन्दिरों में जाते, कभी ईसाइयों के चर्च में, तो कभी हिन्दू देवी-देवताओं के मन्दिरों में – तब किसी ने हमारी ओर नजर तक उठाकर नहीं देखा, कोई हमारी सहायता को नहीं आया। बल्कि दिन-पर-दिन हम लोग मानो अधिकाधिक गहरी निराशा के दलदल में फँसते जा रहे थे। अस्तु, हमें ज्यादा नहीं भुगतना पड़ा। जिस दिन श्रीरामकृष्ण से हमारी भेंट हुई, उसी दिन से हमें एक नया जीवन मिला। जिस क्षण उनके दर्शन मिले, हमारे हृदय की तड़पन, बीते दिनों की निराशा – सब एकदम मिट गयी।... हम जो नास्तिक

थे, उनकी कृपा से पूर्ण आस्तिक बन गये। ... हम लोगों का पक्का विश्वास है कि श्रीरामकृष्ण हमारे उद्धारक हैं; इसलिए हमारी यह दृढ़ धारणा है कि वे साक्षात् सर्वशक्तिमान ईश्वर ही हैं।''[९] पहले श्रीरामकृष्ण को गुरु के रूप में और बाद में अपने इष्ट-देवता के रूप में स्वीकार करते हुए रामचन्द्र उन्हें और उनके भक्तों को बारम्बार अपने सिमला स्थित मकान में आमंत्रित करते और दिल खोलकर भक्तों के सत्कार में खर्च करते। अपने शिष्य के इस परिवर्तन पर विनोद करते हुए श्रीरामकृष्ण कहा करते, ''राम को अब इतना उदार देखते हो; जब पहले आया था, तब वह इतना कृपण था कि मेरे इलायची लाने के लिए कहने पर उसने एक दिन एक पैसे की सूखी इलायची लाकर मेरे सामने रख दी। इसी से तुम समझ सकते हो कि राम के स्वभाव में कितना परिवर्तन आ गया है!''[१०]

श्रीरामकृष्ण की दैवी कृपा ने राम में भक्ति की दिव्य ज्योति प्रज्वलित कर दी। उसने उनकी सभी मलिनताओं को जला डाला और तब उनके भीतर का स्वर्ण दमक उठा। श्रीरामकृष्ण की चेतना का उनके भीतर प्रवेश तथा उसकी क्रिया बाहर से दृष्टिगोचर न होने पर भी उसका प्रभाव उल्लेखनीय था। उसने उनका पूरा अस्तित्व – उनकी वाणी तथा दूसरों पर पड़नेवाला उनका प्रभाव – सब कुछ बदल दिया। वह परिवर्तन इतना स्पष्ट था कि भक्तों को कोई आश्चर्य नहीं हुआ, जब ठाकुर ने कहा, ''आज मैं माँ से कह रहा था – विजय, गिरीश, केदार, राम, मास्टर (महेन्द्रनाथ गुप्त) – इन्हें थोड़ी शक्ति दे दे, ताकि कोई नया आदमी आये, तो इनसे कुछ तैयार होकर मेरे पास आये।''[११] ठाकुर के उपदेशों के प्रसार के लिए राम एक माध्यम के रूप में चुन लिये गये थे। उन्होंने एक नया उद्यान-भवन खरीदा था, जिसका नाम रखा था – 'श्रीरामकृष्ण योगोद्यान'। उसी में रहते हुए एक ओर तो वे साधना की गहराइयों में डूबने लगे और दूसरी ओर बँगला में 'तत्त्व-मंजरी' (मासिक पत्रिका) और 'तत्त्वसार' (१८८५) तथा 'तत्त्व-प्रकाशिका' (तीन खण्डों में, जून १८८६ से जुलाई १८८७) नामक पुस्तकों और संकीर्तन, व्याख्यानों तथा प्रवचनों के माध्यम से श्रीरामकृष्णदेव के सन्देश का प्रचार करने लगे। वे उन कुछ गिने-चुने लोगों में थे, जिनकी धारणा थी कि श्रीरामकृष्ण ईश्वर के अवतार हैं। एक दिन उन्होंने गिरीशचन्द्र घोष से कहा था, ''क्या तुम्हें बोध होता है कि इस बार चैतन्य, नित्यानन्द और अद्वैत तीनों एक बार फिर परमहंसदेव के रूप में आये हैं? वे प्रेम, भक्ति और ज्ञान के समन्वित स्वरूप हैं। जब ईश्वर गौरांग के रूप में अवतरित हुए थे, तब ये गुण तीन व्यक्तियों में अलग-अलग प्रकट हुए थे।''[१२]

इसी प्रकार का परिवर्तन मनोमोहन में भी दिखायी पड़ा था। यद्यपि पहले उनका अहंभाव मार्ग में रोड़ा बनकर खड़ा था, पर श्रीरामकृष्ण की दैवी कृपा ने उसे धीरे-धीरे तोड़ डाला और क्रमशः मनोमोहन में भक्ति का एक उल्लेखनीय प्रवाह दिखाई देने लगा। १९ नवम्बर, १८८२ को मनोमोहन के मकान पर इसकी चर्चा करते हुए श्रीरामकृष्ण ने कहा था, ''जिस प्रकार खली मिला हुआ चारा गाय को प्रिय लगता है, उसी प्रकार असहाय, दीन, दरिद्र लोगों की भक्ति ईश्वर को विशेष प्रिय है। दुर्योधन इतना धन, इतना ऐश्वर्य दिखाने लगा, परन्तु भगवान उसके घर नहीं गये। वे विदुर के घर गये। वे भक्तवत्सल हैं। जिस प्रकार गाय अपने बच्चे के पीछे-पीछे दौड़ती है, उसी प्रकार वे भी भक्तों के पीछे-पीछे दौड़ते हैं।''[१३]

मनोमोहन इतने निष्ठावान और विश्वासी भक्त थे कि लोग अक्सर उनके मुख से सुनते, 'मैं ऐसा कुछ भी सुनना नहीं चाहता, जो 'रामकृष्ण व्याकरण' में सम्मिलित नहीं है।''[१४]

श्रीरामकृष्ण को पूरी तौर से गुरु मान लेने से मनोमोहन में आमूल परिवर्तन आ गया। अब उनके लिए जीवन का अर्थ – कष्टों से उदासीन रहना नहीं, अपितु हर परिस्थिति में शान्त और सम बने रहना था। उनका जीवन उस अंकुरित हो रहे बीज के समान था, जो एक ओर तो अपनी जड़ें नीचे जमीन में भेजता है, ताकि वह मजबूती से खड़ा रह सके और दूसरी ओर अपनी कोपलें ऊपर भेजता है, ताकि वह पौधा बनकर भक्तों को आनन्दित करने हेतु अपनी डालियों पर फूल खिला सके।

❑❑❑

१. रामकृष्ण मिशन के १६.५.१८९७ को हुए चतुर्थ अधिवेशन में श्री मनोमोहन मित्र ने ये बातें कही थीं। **२.** बाद में मनोमोहन ने बताया था कि किस प्रकार श्रीरामकृष्ण के प्रभाव से उनकी चेतना में परिवर्तन हुआ था – ''मेरी सात महीने की कन्या की मृत्यु होने पर जब उसे दफना दिया गया, तब मैं उस दफनाये हुए स्थान को खोजने का प्रयास किया करता, ताकि उसकी देह को सुरक्षित रख सकूँ। पता नहीं कैसे मेरे अन्दर यह धारणा घर कर गयी थी कि यदि उसकी देह को फिर से पा लूँ, तो वह पुनः जीवित हो जायेगी। मेरा मन इस प्रकार के विचार से भ्रमित हो उठा था। अभी आप लोगों को कुछ भी धारणा नहीं हो सकती कि उस समय मेरी मानसिक अवस्था कैसी थी...। यह श्रीरामकृष्णदेव के आशीर्वादों का ही फल है कि भ्रम के वे बादल दूर हो सके।'' ('तत्त्वमंजरी', वर्ष ९, अंक ६, पृ. १३४); **३.** 'महात्मा रामचन्द्रेर वक्तृतावली' (बँगाली), प्रकाशक – श्रीश्रीरामकृष्ण समाधि महापीठ, योगोद्यान, काँकुड़गाछी, कलकत्ता-५४, तृ. सं., खण्ड १, पृ. ३६-८। **४.** वही, पृ. ३९; 'भक्त मनोमोहन' (बँगाली), उद्बोधन, ९ उद्बोधन लेन, कलकत्ता-३, पृ. २७। **५.** 'भक्त मनोमोहन', पृ. २९। **६.** रामचन्द्र दत्त : 'श्रीश्रीरामकृष्ण परमहंसदेवेर जीवनवृत्तान्त' (बँगला), श्रीरामकृष्ण योगोद्यान, कलकत्ता-५४, ७ वाँ संस्करण, पृ. १२०। **७.** 'वक्तृतावली', पृ. ३९-४०। **८.** 'जीवन वृतान्त', पृ. १२१। **९.** 'तत्त्वमंजरी', खण्ड २, पृ. ८४-५। **१०.** 'श्रीरामकृष्ण-लीलाप्रसंग', प्रथम सं., तृतीय भाग, पृ. ४४। **११.** वही, पृ. २१४। **१२.** गिरीशचन्द्र घोष कृत 'रामदादा', 'तत्त्वमंजरी', वर्ष ८, अंक ९, पृ. २०३। **१३.** 'श्रीरामकृष्ण-वचनामृत' तृतीय सं., प्रथम भाग, पृ. १५९। **१४.** विजयनाथ मजुमदार कृत 'महात्मा मनोमोहन मित्र', 'तत्त्वमंजरी', वर्ष ९, अंक ६, पृ. १३४।

माँ को जैसा देखा है

स्वामी गौरीश्वरानन्द

(माँ श्री सारदा देवी दैवी-मातृत्व की जीवन्त विग्रह थीं। उनके अनेक शिष्यों तथा भक्तों ने उनकी मधुर-पावन स्मृतियाँ लिपिबद्ध कर रखी हैं। बँगला ग्रन्थ 'श्रीश्री मायेर पदप्रान्ते' से इस लेख का अनुवाद किया है इलाहाबाद की श्रीमती मधूलिका श्रीवास्तव ने। – सं.)

(पिछले अंक से आगे)

एक अन्य घटना याद आ रही है। एक बार चार महिलाएँ बैलगाड़ी में सवार होकर घाटाल से जयरामबाटी आयीं। सबसे पहले उनसे मेरी ही भेंट हुई। मैंने पूछा, "क्या आप लोग माँ का दर्शन करने आयी हैं? माँ को आज तीन दिन से बुखार आया हुआ है।" उन दिनों मलेरिया का प्रकोप बहुत था। हम लोगों को भी होता और माँ को भी होता। पूछा, "दीक्षा की बात तो नहीं है?" उन लोगों ने कहा, "वही आशा लेकर तो आयी थीं। खैर, अभी तो हम केवल माँ को प्रणाम करेंगी।" मैं बोला, "तीन-चार दिन ठहर जाइये। दवा खाकर माँ का बुखार उतर जाने पर ही दीक्षा की बात कहियेगा, अन्यथा बाद में पत्र द्वारा यह जानने के बाद कि माँ ठीक हैं, दीक्षा लीजियेगा।" मैंने उन्हें इतना सब सिखाया-पढ़ाया, लेकिन वे माँ के पास जाकर बोलीं, "हम लोग कृपा पाने के लिये आयी थीं, परन्तु हम लोगों का तो भाग्य ही बड़ा खोटा है।"

मैं माँ की सेवा किया करता था। मुझे उनकी कृपा मिली थी, दीक्षा भी मिली थी और तब मैं स्कूल में पढ़ता था, तो भी माँ मेरे समक्ष कैसा विनय दिखा रही थीं कि कहीं मैं – अभी बुखार है, दीक्षा बाद में होगी – कहकर मना न कर दूँ। वे मुझसे विनयपूर्वक बोलीं, "बेटा, पुरुष-शिष्यों की बात अलग है। उनकी तो जब इच्छा हो, यहाँ-वहाँ आ-जा सकते हैं। परन्तु औरतों का घर से निकलना बड़ा कठिन है। सौ काम छोड़कर घर से निकल नहीं पातीं। इसलिये बेटा, मैं स्नान नहीं करूँगी। थोड़ा-सा गंगाजल छिड़ककर जरा-सा आसन पर बैठकर थोड़ा भगवान का नाम सुना देने में क्या हर्ज है?" मैं तो अवाक् रह गया! कहीं मैं मना न कर दूँ, इसके लिए उनका इतना विनय! इसके बाद, एक-एक कर उन चारों महिलाओं को दीक्षा देने के बाद वे पुन: लेट गयीं और साबुदाना ग्रहण किया। उस समय जयरामबाटी गाँव में किसी के भी घर नीबू का वृक्ष नहीं था। एक नीबू का रस डालकर साबुदाना बड़ा स्वादिष्ट हो जाता है। अत: मैं बहुत दूर के बाजार से नीबू खरीदकर ले आता। कहीं शनि तथा मंगलवार को बाजार लगता, तो कहीं बृहस्पति-रविवार को।

एक अन्य घटना बेलूड़ मठ में हुई थी। तब मैं बेलूड़ मठ गया था। एक लड़का शरत् महाराज (सारदानन्दजी) से दीक्षा पाने के लिये बहुत जिद कर रहा था। शरत् महाराज बोले, "आज तू मुझसे दीक्षा माँग रहा है और बाद में मुझे ही दीक्षा देना चाहेगा।" मैं समझ नहीं सका कि उन्होंने ऐसी बात क्यों कही! इसी बीच माँ जयरामबाटी से उद्बोधन-भवन में आ पहुँचीं। लड़के ने कभी माँ का दर्शन नहीं किया था। माँ का चरण-स्पर्श करते ही माँ ने उसके सिर पर हाथ रखकर खूब आशीष दिया। उसने खूब आनन्दित होकर माँ से दीक्षा लेने की बात कही। माँ बोलीं, "ठीक है, तुम्हारी दीक्षा कल होगी।" शरत् महाराज सब जानते थे। जब इस लड़के की दीक्षा हो गई, तो वह शरत् महाराज को प्रणाम करने गया। शरत् महाराज ने कहा, "देख, तू बहुत दिनों से मुझे तंग कर रहा था कि दीक्षा दीजिए, दीक्षा दीजिए। वह पंचांग ले आ, तो तेरी दीक्षा का दिन निश्चित कर दूँ।" लड़का चुपचाप खड़ा रहा, कुछ बोला नहीं। महाराज ने फिर कहा, "क्यों रे। खड़ा क्यों है? पंचांग ले आ न! तेरी दीक्षा का दिन निश्चित करूँ।" तब भी वह चुपचाप खड़ा रहा। तब शरत् महाराज ने कहा, "देखा, क्यों तुझसे कहा था न कि आज मुझसे दीक्षा माँग रहा है, कल मुझे ही दीक्षा देना चाहेगा। देखा न, वे मुझसे कितनी बड़ी हैं! मैं जानता था कि तेरी माँ से दीक्षा होगी।

मैं देखता – माँ सभी को दीक्षा देतीं, परन्तु मेरी ही आयु का एक काला लड़का उनसे दीक्षा देने के लिये बहुत कहता रहा, पर माँ बोलीं, "तुम राखाल से ले लो।" वह रो-रोकर बेहाल हो रहा था, तो भी दीक्षा नहीं दे रही थीं। माँ किसी को लौटाती नहीं थीं, पर मैं समझ नहीं सका कि उसे क्यों लौटा रही हैं। अब लगता है कि माँ ने उसे देखते ही समझ लिया था कि राखाल महाराज (ब्रह्मानन्दजी) के साथ उसका गुरु-शिष्य का सम्पर्क है, इसी कारण उन्होंने उसे दीक्षा नहीं दिया। मैं नहीं जानता कि बाद में उस लड़के ने महाराज से दीक्षा ली थी या नहीं। पर माँ ने उसे दीक्षा नहीं दिया। इसी

प्रसंग में एक अन्य बात कहता हूँ। एक बागदी (आदिवासी) लड़का आया था। माँ उसे दीक्षा देने की इच्छुक नहीं थीं। उसने कहा, "ओ माँ, जब आप विपत्ति में पड़ी थीं, तब तो बागदी को 'पिता' कहा था। वे मेरे ही पिता थे।" तब माँ ने उसे दीक्षा दी। ऐसा कदाचित् ही कभी होता था। अन्यथा वे सभी को दीक्षा दे देतीं। उनकी सारी बातें ही अद्भुत हैं।

जब मैं जयरामबाटी जाता, तो जानता था कि साधु होने वाले बहुत-से लोग पहले स्वराज पाने के लिये अंग्रेजों का विरोध करते थे अर्थात् राजद्रोही थे, लेकिन बाद में उन लोगों के वह सब छोड़कर साधु हो जाने पर भी अंग्रेज सरकार हमारे रामकृष्ण मिशन पर सन्देह करती। सोचती कि ये लोग दिन में गेरुआ पहनकर घूमते हैं और रात में बन्दूक लेकर अंग्रेजों को मारने के लिये निकलते हैं। इसलिये हमारे किसी भी आश्रम में किसी अतिथि के आने पर पुलिस आकर एक रजिस्टर में उसका नाम-पता लिखकर ले जाती। जयरामबाटी जाने पर मैं भी इसी प्रकार अपना नाम-पता लिख देता। वह रिपोर्ट जब हमारे थाने में जाती, तो दरोगा मुझे बुला लाने को एक सिपाही भेजते। मेरे घर के सभी लोग मेरे जयरामबाटी जाने से नाराज थे। वे लोग इसलिये भी खुश नहीं थे कि बाद में कहीं मैं साधु न हो जाऊँ! रास्ते में जाते हुए वह सिपाही मुझसे कहता, "तुम पोलिटिकल सस्पेक्ट हो, तुम्हें जेल में भर दिया जायेगा। तुम ऐसा काम मत करो।" मैं कहता, "तुम नहीं समझोगे। तुम्हारे दारोगा को समझाऊँगा।"

जाते ही दरोगा कहते, "तुम तो अभी बच्चे हो, राजनीति क्यों करते हो।" मैं कहता, "महाशय, मैं राजनीति नहीं करता। मैं अखबार ही नहीं पढ़ता।" जिस दिन मैंने वचनामृत में पढ़ा – ठाकुर प्रसाद मित्र से कह रहे हैं, 'यह अखबार हटाओ।' उसी दिन से मेरा अखबार से नाता टूट गया। १९१५ ई. से आज ६३ वर्ष हो गये, मैंने अखबार नहीं छूआ। मैं उनसे कहता, "मैं अखबार नहीं पढ़ता, राजनीति क्या करूँगा?" वे कहते, "तुम बी.ए. पास करो, उसके बाद राजनीति करना।" मैं कहता, "मैं वहाँ गुरुसेवा करने जाता हूँ और वे स्त्री हैं, पढ़ना-लिखना नहीं जानतीं, वे वह सब राजनीति नहीं करतीं।" मैं यही सब बोलता और वे लोग कहते, "अच्छा जाओ।" और छोड़ देते। मैं हर शनिवार को वहाँ चला जाता, रविवार को रहता और सोमवार को सुबह सीधे स्कूल चला आता। एक बार ऐसा हुआ कि सोमवार को स्कूल आया और सम्भवत: बुधवार या बृहस्पतिवार को छुट्टी थी, सो जयरामबाटी चला गया। इधर जब सिपाही मेरी रिपोर्ट लेकर मेरे घर गया, तो मुझे वहाँ न पाकर उसने घर में पूछताछ की। घर के लोगों ने कहा कि मैं जयरामबाटी चला गया हूँ। उसने सोचा कि मेरी खबर न ले जाने से दरोगा नाराज होंगे, अत: मुझे खोजते हुए वह जयरामबाटी चला गया। जब वह सिपाही जयरामबाटी पहुँचा, तब तक मैं घर लौट आया था। बाद में मैंने सुना कि मुझे पकड़ने के लिए पुलिस को घर आया हुआ देखकर माँ रो उठी थीं और बोलीं, "मेरा शान्त सुबोध लड़का, कभी किसी का अनिष्ट नहीं करता, पुलिस उसके पीछे क्यों घूम रही है?" उन्होंने मेरे लिए देवी सिंहवाहिनी को मनौती दी – "माँ सिंहवाहिनी! मेरा लड़का सकुशल लौट आये, तो तुम्हें पूजा दूँगी।"

अगले शनिवार को जब मैं घर गया, तो मुझे पाकर माँ के आनन्द का ठिकाना नहीं रहा, मानो खोयी हुई निधि मिल गयी हो! इतना आनन्द! सिर पर हाथ फेरते हुए बोलीं, "क्या हुआ था बेटा, पुलिस क्यों तुम्हें पकड़ने आयी थी?" मैंने कहा, "लगता है वह यहाँ भी चला आया था! माँ, मुझे तो हर सप्ताह एक बार थाने में जाना ही पड़ता है। अभी तो थाना मेरी ससुराल बना हुआ है।" इसके बाद माँ ने सिंहवाहिनी को पूजा दी, मुझे चरणामृत पिलाया, तब कहीं शान्त हुईं।

जब मेरे हेड-मास्टर महाशय ने सुना कि मेरी माँ मेरे लिये बहुत रोयी हैं, तो वे मुझसे बोले, "पुलिस के रजिस्टर में तू अपने घर का पता मत लिखना। लिखाना – बदनगंज हाई स्कूल (थाना बदनगंज) की कक्षा आठ का छात्र। घर का पता मत देना।" अगली बार ऐसा ही रिपोर्ट गया। दरोगा थे हरिबाबू। आजकल के दरोगा लोग बी.ए.–एम.ए. पास होते हैं। उन दिनों सब नॉन-मैट्रिक थे। दरोगा हरिबाबू की हेड-मास्टर महाशय के प्रति खूब श्रद्धा थी। उनके पास अंग्रेजी में कोई चिट्ठी आती, तो उसका जो उत्तर देना होता, वह हेड-मास्टर महाशय लिख देते और उनसे गुरु के समान श्रद्धा पाते। मेरे नाम रिपोर्ट आते ही वे पहले मास्टर महाशय के पास गये कि आपके एक छात्र राममय के नाम रिपोर्ट आया है। क्या वह रामकृष्ण मिशन में जाता है? मास्टर महाशय ने उससे कह दिया, "मैं उसको जानता हूँ। वह मेरे स्कूल का सबसे अच्छा छात्र है, अत्यन्त सच्चरित्र है। पढ़ाई-लिखाई में बहुत अच्छा है। तुम ऐसा ही लिख दो।" मास्टर महाशय ने स्वयं ही लिख दिया, "वह राजनीति नहीं करता। गुरुसेवा करने के लिये जाता है और वे मेरी भी गुरु हैं। वे स्त्री हैं। वे राजनीति नहीं जानतीं।" लिखने के बाद मास्टर महाशय ने कहा, "हर बार इसी प्रकार लिख देना।" तब मैंने माँ से कहा, "अब मुझे पुलिस के पास नहीं जाना पड़ता। मास्टर महाशय जो लिख देते हैं, दरोगा वही लिखकर भेज देता है।" माँ बहुत खुश हुईं। उन्हें बहुत आनन्द हुआ।

माँ के पास मेरा आना-जाना शुरू होने के बाद जब वे पहली बार कलकत्ते जा रही थीं, उस दिन मैं सुबह से काफी भाग-दौड़ कर रहा था। सारे सामान इकट्ठा करके पैकिंग आदि करके सिर पर रखकर आमोदर नदी के उस पार ले जा

(शेष अगले पृष्ठ पर)

स्वामी प्रेमानन्द के संग में (४)

(बाबूराम महाराज के नाम से सुपरिचित स्वामी प्रेमानन्दजी श्रीरामकृष्ण देव के एक प्रमुख शिष्य थे। वे बेलूड़ मठ के सर्वप्रथम व्यवस्थापक थे। मठ के मन्दिर में वे पूजा भी किया करते थे। स्वामी ओंकारेश्वरानन्द ने बँगला भाषा में हुए उनके अनेक वार्तालापों को लिपिबद्ध कर लिया तथा ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित कराया था। वहीं से इनका हिन्दी अनुवाद किया है स्वामी विदेहात्मानन्द ने। – सं.)

३. कर्मयोग (परिच्छेद १)

आज बृहस्पतिवार, ९ दिसम्बर १९१५ ई. का दिन है। रात के ८ बजे हैं। मठ के उसी पूर्व-परिचित विश्रामकक्ष में बाबूराम महाराज पूर्व की ओर मुख किये बैठे हैं। अब भजन होंगे। एक भक्त तबले का सुर मिला रहे हैं। उसके बाद बाबूराम महाराज बोले, "थोड़ा रामप्रसादी भजन हो।" साधुओं ने एक साथ मिलकर गाना आरम्भ किया – (भावार्थ) –

रे मन, तू काली कहकर हृदय-रूपी
रत्नाकर (समुद्र) के अथाह जल में डुबकी लगा।
यदि दो-चार डुबकियों में भी धन हाथ न लगे,
तो भी रत्नाकर शून्य नहीं हो सकता।
तू पूरा दम लेकर एक ऐसी डुबकी लगा कि
कुल-कुण्डलिनी के पास पहुँच जाय।।

रे मन, ज्ञानसमुद्र में शक्तिरूपी मुक्ताएँ फलती हैं।
यदि तू शिव की युक्ति के अनुसार
उन्हें भक्तिपूर्वक ढूँढ़ेगा, तो तू उन्हें पा सकेगा।
उस समुद्र में काम आदि छह घड़ियाल बसते हैं,
जो सर्वदा खाने के लोभ में घूमते रहते हैं।
तू अपने शरीर में विवेकरूपी हल्दी चुपड़ ले,
तो उसकी गन्ध से वे तुझे नहीं छुएँगे।।

उस जल में असंख्य रत्न और माणिक पड़े हुए हैं,
रामप्रसाद कहते हैं कि यदि तू उसमें कूद पड़ेगा,
तो तुझे वे सारे-के-सारे रत्न प्राप्त हो जाएँगे।।

इसके बाद दूसरा भजन आरम्भ हुआ – (भावार्थ) –

काली ने सारे झंझट दूर कर दिये हैं।
आगम-निगम आदि शास्त्रों में
शिव के जो वचन है, उन्हें तुम मानोगे या नहीं?

माँ, तुम्हें श्मशान में ही रहना पसन्द है
मणियों के महल को तुम तुच्छ समझती हो।

जैसी तुम हो, वैसे ही तुम्हारे पतिदेव भी है,
अतः तुम्हारा भाँग घोटना छूटता नहीं।

माँ, जो व्यक्ति तुम्हारा भक्त होता है,
उसके रूप की छटा ही भिन्न होती है।

पिछले पृष्ठ का शेषांश

रहा था। नदी में घुटने भर पानी था, पैदल चलकर पार करना पड़ता था (तब तक आमोदर नदी पर पुल नहीं बना था, माँ की जन्म-शताब्दी के समय बना)। उस पार कोआलपाड़ा से बैलगाड़ी आती। सारा सामान भेज चुका था। शरत् महाराज भी चले गये। सबसे अन्त में माँ निकलने वाली थीं। वे पालकी में जायेंगी। उस पार शरत् महाराज के बैलगाड़ी में बैठने के पूर्व मैंने उनके पाँव धोकर गमछे से पोंछ दिये। योगीन माँ गयीं, गोलाप माँ गयीं – मैंने उनके भी पाँव धोये और उस समय की हम लोगों की सरला दीदी, जो बाद में भारतीप्राणा के रूप में सारदा मठ की प्रथम अध्यक्षा हुईं – उनके भी पाँव धोने चला, तो वे किसी भी प्रकार राजी नहीं हुईं। मैंने कहा, "अरे, आप माँ की शिष्या हैं, मैं भी माँ का शिष्य हूँ, आप मुझसे उम्र में बड़ी हैं। यदि पाँव धो दिये, तो क्या हुआ? आप तो मेरी दीदी हैं।" वे बोलीं, 'नहीं भाई, मुझसे नहीं होगा, तुम पानी दो, मैं स्वयं धो लेती हूँ।"

इस प्रकार सब चले गये। माँ जा रही हैं, उनकी पालकी के साथ-साथ मैं भी चल रहा हूँ। नदी के किनारे पहुँचने पर माँ ने कहा, "बेटा, अब उस पार मत जाओ।" (शास्त्र में भी है **सलिलान्ते परिव्रजेत** – किसी को विदा करते समय, कोई जलाशय सामने आ जाय, तो आगे जाने की जरूरत नहीं।)

माँ चली जा रही हैं, मुझे जोरों से रुलाई आ रही है, लेकिन माँ को दुख होगा – यह सोचकर मैंने किसी प्रकार स्वयं को रोक रखा था। परन्तु माँ ने ज्योंही कहा, "बेटा, रोओ मत" – तो मेरी दबी हुई रुलाई जोरों से फूट पड़ी। माँ पुनः पालकी से उतरी और आँचल से मेरे आँख-मुख पोंछकर शरीर पर हाथ फेरते हुए बोली, "बेटा, क्या करूँ, मलेरिया से पड़ी हूँ, शरत् आया है, जाना ही होगा। वहाँ जाने पर मलेरिया नहीं होती। जगद्धात्री पूजा के समय फिर लौट आऊँगी। अच्छी तरह खाना-पीना, रहना।" माँ के यह सब बोलने के बाद जब मैं चुप हुआ, तब माँ नदी पार हुईं। जयरामबाटी लौटकर सीधे, आंगन में लोटते हुए मैं बहुत देर तक रोता रहा। आज मुझे जयरामबाटी अच्छा नहीं लग रहा था, माँ का कमरा खाली था, कोई भी नहीं था – मैं स्कूल चला गया। वहाँ से घर गया और शबरी के समान प्रतीक्षा करने लगा – माँ जयरामबाटी कब लौटेंगी।

❖ (क्रमशः) ❖

वह अपने शरीर पर भभूत लगाये
और सिर पर जटा बढ़ाये रहता है और
उसके कमर के लिये कौपीन तक नहीं जुटती,
माँ तुमने मुझे धरती पर लाकर,
मेरी हालत पिटे हुए लोहे के समान कर दी,
परन्तु तुम्हें मेरे हिम्मत की दाद देनी होगी कि
तो भी मैं सदा 'काली' काली' पुकारता रहता हूँ ।

अब तो सारी दुनिया में यह बात फैल गयी है
कि रामप्रसाद ब्रह्ममयी का पुत्र है,
माता और पुत्र के बीच जो ऐसा आचरण होता है,
इसका मर्म भला कौन समझ सकेगा !!

भजन समाप्त होने के बाद बाबूराम महाराज मधुर स्वर में 'हरिबोल, हरिबोल' का उच्चारण कर रहे हैं। उनके प्रत्येक शब्द से मानो अमृत झर रहा है। हारमोनियम, तबले आदि को हटाकर मन्दिर में रख दिया गया। सभी लोग मौन बैठे प्रतीक्षा कर रहे हैं कि बाबूराम महाराज अब कुछ कहेंगे।

आजकल नये ब्रह्मचारियों में से कोई गायों के लिए घास काटता है, कोई गोशाला की सफाई करता है, तो कोई गोबर से उपले पाथता है। उच्च शिक्षित तथा विश्वविद्यालय से उपाधिप्राप्त ब्रह्मचारी भी ऐसे ही कार्यों में नियुक्त हैं। बाबूराम महाराज उन्हीं की ओर उन्मुख होकर कहने लगे –

''कर्मफल भगवान को समर्पित करते हुए जो भी कर्म किये जाते हैं, वे ही बड़े कर्म हैं और उन्हीं से चित्तशुद्धि होती है। निष्काम कर्म में कुछ भी छोटा-बड़ा नहीं है। कर्म तो चित्तशुद्धि के लिये ही है। **कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन** – फल की ओर दृष्टिपात न करते हुए, नि:स्वार्थ भाव से केवल कर्म किये जाओ।

''मन को कोंचना होगा। बीच-बीच में विचार करना होगा कि कर्म नि:स्वार्थ भाव से हो रहे हैं या नहीं। देखना होगा कि बाहर से नि:स्वार्थता का मुखौटा लगाये, भीतर कहीं स्वार्थपरता या अहंकार तो नहीं छिपे बैठे हैं। खूब सावधान रहकर कार्य करना होगा कि कहीं तुम्हारे भीतर स्वार्थपरता न प्रविष्ट हो जाय ! सावधान !! जब ढेंकी में चावल कूटते हैं, तो बीच-बीच में थोड़ा-सा निकालकर देखते हैं कि कुटाई ठीक हो रही है, या नहीं। इसी प्रकार बीच-बीच में देखना होगा, मन-ही-मन विचार करना होगा कि कर्म के द्वारा स्वार्थपरता, राग-द्वेष, आसक्ति आदि अपवित्र भाव मन से क्रमश: दूर हो रहे हैं, अथवा नहीं।

''खूब बड़े-बड़े कार्य करके यदि अहंभाव न घटे, तो निरहंकार होकर छोटे-छोटे कार्य करना ही बेहतर है। कर्म ही बन्धन है और कुशलतापूर्वक किया गया कर्म ही मुक्ति है। इस कुशलता को ही योग कहते हैं – **योगः कर्मषु कौशलम्।** उद्देश्य अर्थात् चित्तशुद्धि की ओर ध्यान रहे, तो नाम-यश तथा लोकनिन्दा आदि की ओर दृष्टि नहीं जाती और काम भी भलीभाँति सम्पन्न होता है। इस उद्देश्य को भूलकर बड़े-बड़े कार्य सम्पन्न करना, हमारा आदर्श नहीं है। मनुष्य को धोखा दिया जा सकता है, पर भगवान तो अन्तर्यामी हैं; उनसे धोखाधड़ी नहीं चल सकती। और धोखा दोगे भी किसे? धोखेबाजी से स्वयं ही धोखे में पड़ोगे, जीवन व्यर्थ चला जायेगा। इतना कहकर वे गाने लगे – (भावार्थ) –

रे मन ! तू खेती करना नहीं जानता ।
तेरी कीमती मनुष्य योनि की खेत परती ही रह गयी,
उपयोग करने पर इसमें सोना फल सकता था !

पहले तो तू इसमें 'काली' के नाम का घेरा लगा दे,
इससे तेरी फसल नष्ट न हो सकेगी ।
वह तो मुक्तकेशी जगदम्बा का बड़ा ही सुदृढ़ घेरा है,
उसमें तो यम की भी घुसने की हिम्मत नहीं पड़ती ।

क्या तू नहीं जानता कि आज या सौ साल बाद
यह जमीन बेदखल हो जाएगी,
इसलिये, तू अभी पूरे लगन के साथ
इसे जोतकर फसल क्यों नहीं उगा लेता !

इसमें गुरु से मिला हुआ बीज डालकर
तू भक्ति के जल से सिंचाई करते रहना ।
रे मन, यदि तू यह कार्य अकेले न कर सके,
तो 'रामप्रसाद' को भी अपने साथ ले लेना ।

''इसीलिए तुम लोगों से कहता हूँ कि यदि जीवन को सार्थक करना चाहो, तो मन-मुख एक करो, नि:स्वार्थ बनो, त्यागी होओ। मैं तो बस इतना ही समझता हूँ। **नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय** – इसे छोड़कर दूसरा कोई भी मार्ग नहीं।

''जो उपले पाथता है, गायों की सेवा करता है, वह पूजा आदि कार्यों से किसी भी दृष्टि से छोटा कार्य नहीं करता। इसी स्वार्थहीनता का भाव लाने के लिए मैं तुम लोगों से परिश्रम कराता हूँ। कर्म किये बिना कर्मत्याग की अवस्था भला कैसे आ सकती है? नहीं तो आलसीपना आ जाता है। गीता में भी यही बात कही गयी है – **न कर्मणाम् अनारम्भात् नैष्कर्म्यं पुरुषो अश्नुते**। संसार में गृहस्थ लोग भी नाक में नकेल डाले दिन भर मेहनत करते रहते हैं, परन्तु वह सब अपने बाल-बच्चों के स्वार्थ के लिए होता है। इसीलिए उनके कर्म से बन्धन और भी बढ़ता जाता है। वे लोग यदि भगवद्बुद्धि से संसार की भी सेवा करें, तो उसी से बन्धन धीरे-धीरे कट जाते हैं। परन्तु महामाया का ऐसा खेल है कि वह आसानी से कुछ करने ही नहीं देती। वही 'मेरा'-'मेरा' करते हुए लोग जान दे देते हैं !!

''विरूपाक्ष (स्वामी विदेहानन्द) जो इस समय ठाकुर की पूजा कर रहा है, पढ़ने-लिखने में तो खूब विद्वान् है, परन्तु

पहले मठ में गायों की सेवा किया करता था। पिछली बार जब वह वाराणसी गया, तो विद्वान् होकर भी वहाँ गायों के लिए चारा काटता था। उसकी निरभिमानिता की बात सुनकर ब्रह्मानन्द स्वामी ने उसके बारे में बहुत ही अच्छा मत व्यक्त किया था। मैं स्वयं भी तुम लोगों के साथ गोबर से उपले पाथ रहा हूँ, नहीं तो केवल भक्तों को चरणधूलि दे-देकर ही क्या अपना परलोक बिगाड़ूँगा? इसी कारण गोबर भी उठाता हूँ, उपले भी पाथता हूँ, गायों की सेवा भी करता हूँ और ठाकुर की पूजा भी करता हूँ।

''अभिमान रखने से कुछ भी न होगा, उसे छोड़ना ही होगा। मैं देखता हूँ कि तुम लोगों में से किसी-किसी में अभिमान है। जब ठाकुर के आश्रय में आ गये हो, तो अधपके होकर क्यों रहोगे? यहाँ आकर सबको सिद्ध अर्थात् नरम – निरहंकार बनना होगा। तुम लोग तो घर के ही बच्चे हो, भला भूखे क्यों रहोगे? तुम सभी भाव-भक्ति तथा प्रेम से नरम हो जाओ। अहं का नाश कर डालो। इस व्यर्थ के अहंकार ने ही जीव को भगवान से अलग कर रखा है।

''कहो – नाहं, नाहं, नाहं, तूहू, तूहू, तूहू – 'मैं' नहीं, 'मैं' नहीं, प्रभु, 'तुम्हीं', 'तुम्हीं' – 'जो कुछ है, सो तू ही है।' अहा, ठाकुर कैसे निरभिमानी थे! अभिमान का कैसे त्याग किया जाता है, यह वे स्वयं ही जीवों को सिखा गये हैं। अहं का नाश करने के लिए वे कंगालों के जूठे पत्तल सिर पर उठाकर गंगा में फेंक आया करते थे। अपने सिर के लम्बे-लम्बे बालों से उन्होंने काली-मन्दिर के पाखाने साफ किये थे।

''नाग महाशय का जीवन ही देखो न! अभी हाल ही की तो बात है, उनमें अहंकार का लेशमात्र भी न था। मैं वैसा जीवन ही पसन्द करता हूँ। भीतर अभिमान-अहंकार पालकर, बाहर से गेरुआ! छी! छी! नाग महाशय क्या गेरुआ पहनते थे? वे तो भाव-भक्ति और प्रेम से विनम्र हो गये थे। 'हे प्रभो, मेरा सिर अपनी चरणधूलि में अवनत कर दो!' – यह बात क्या पोथी-पत्रों में ही रह जायेगी? गिरीश बाबू ने कहा था, 'महामाया जब नाग महाशय को बाँधने गयीं, तो वे इतने छोटे हो गये कि वे उन्हें बाँध ही नहीं सकीं।'

''ठाकुर का पहली बार दर्शन करने के तीन-चार दिन बाद, एक दिन बागबाजार में सहसा मेरी भेंट रामदयाल बाबू से हुई। उन्होंने मुझे बुलाकर कहा, 'तुम्हें परमहंसदेव ने बुलाया है, एक बार जाना।' मैंने विस्मित होकर कहा, 'मुझे बुलाया है! क्यों?' अहा, वे इतने दयालु थे, यह बात तो उस समय समझ नहीं सका था। बाद में एक दिन मैं दक्षिणेश्वर गया। तब भी वे मुझे 'तू' कहकर सम्बोधित किया करते थे। मेरे पहुँचते ही वे बोले, 'ये लकड़ियाँ पंचवटी में ले जा तो!' उस दिन ठाकुर वहाँ वनभोज आयोजित कर रहे थे। उसी प्रकार वे हमसे बहुत-सा काम करा लेते थे।

''कल रात मैंने एक सपने में देखा कि स्वामीजी आये हैं। उन्हें देखकर मैं रोते हुए उनके चरणों में गिर पड़ा और बोला, 'अब तुम्हें नहीं जाने दूँगा। तुम यहीं रह जाओ। तुम्हारा दर्शन पाकर भारतवर्ष फिर जाग उठेगा।' मैं महाराज (स्वामी ब्रह्मानन्द) के भी पाँव पकड़कर बोला, 'महाराज, स्वामीजी को मत छोड़ो, बहुत दिनों के बाद आये हैं' और स्वामीजी से बोला, 'ठाकुर की कृपा से मुझे अनन्त धैर्य तथा अनन्त शिक्षा की प्राप्ति हो रही है।'

रात के साढ़े नौ बजे थे। प्रसाद का घण्टा बजा। सभी लोग बाबूराम महाराज को प्रणाम करने के बाद प्रसाद पाने चले गये।

❖ (क्रमशः) ❖

प्रत्येक सम्प्रदाय एक ही ईश्वर की ओर ले जाता है

हर एक व्यक्ति को अपने स्वधर्म का ही पालन करना चाहिए। ईसाई को ईसाई धर्म का, मुसलमान को मुसलिम धर्म का पालन करना चाहिए। हिन्दुओं के लिए प्राचीन आर्य ऋषियों का सनातन मार्ग ही श्रेयस्कर है। जब तुम बाहर के लोगों के साथ मिलो, तो सबसे प्रेम करो, हिल-मिलकर एक हो जाओ – द्वेषभाव तनिक भी न रखो। 'वह साकारवादी है, निराकार नहीं मानता', 'वह निराकारवादी है, साकार नहीं मानता', 'वह हिन्दू है, वह मुसलमान है, वह ईसाई है' – इस प्रकार किसी के प्रति नाक-भौं सिकोड़ते हुए घृणा मत प्रकट करो। भगवान ने जिसको जैसा समझाया है, उसने उन्हें वैसा ही समझा है।

यह जानकर कि सभी जन भिन्न-भिन्न स्वभाव के हैं, सब के साथ जितना सम्भव हो सके मिला-जुला करना। इस प्रकार बाहर सब से प्रेम से मिलकर जब तुम अपने घर आओगे तब मन में शान्ति और आनन्द का अनुभव करोगे।

– *श्रीरामकृष्ण*

स्वामी सदानन्द (४)

स्वामी अब्जजानन्द

(स्वामी विवेकानन्द के अल्पावधि जीवन-काल में अनेक नर-नारी उनके घनिष्ठ सम्पर्क में आये। कुछ युवकों ने उन्हीं के चरणचिह्नों पर चलते हुए त्याग-संन्यास का जीवन भी अंगीकार किया था। प्रस्तुत है स्वामीजी के उन्हीं संन्यासी शिष्यों में से कुछ की जीवन-गाथा। बँगला भाषा से इसका हिन्दी अनुवाद किया है स्वामी विदेहात्मानन्द ने। अनुवाद में कहीं-कहीं अंग्रेजी संस्करण से भी सहायता ली गयी है। – सं.)

१८९८ ई. के अक्तूबर में स्वामीजी अपनी टोली के साथ बेलूड़ मठ लौटे। भगिनी निवेदिता एक विदेशी महिला थीं। उनके पाश्चात्य संस्कारों को भारतीय साँचे में ढालकर सनातन वैदिक संस्कृति में परिणत करने का कठिन उत्तरदायित्व स्वामीजी ने स्वयं ही स्वीकार किया था। परन्तु यहाँ विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि निवेदिता के सामान्य देखभाल का कार्य स्वामीजी ने सदानन्द को ही सौंपा था। मुख्यत: उन्हीं की सहायता से निवेदिता ने मठ की दैनन्दिन जीवन-धारा तथा कर्म-प्रणाली का घनिष्ठ परिचय प्राप्त किया था और अपने परमपूज्य आचार्यदेव (स्वामीजी) के लोकोत्तर जीवन-कथा के विषय में बहुत-सी बातों की जानकारी प्राप्त कर सकी थीं। भगिनी ने इस बात को स्वयं ही स्वीकार किया है, "इनका संन्यास-नाम स्वामी सदानन्द है। इनकी अंग्रेजी धारा-प्रवाह तो नहीं, परन्तु ओजपूर्ण है। इन्हीं के द्वारा स्वामीजी के उन दिनों के मठ-जीवन के बारे में मुझे कुछ धारणा हुई है।"

मार्च १८९९ ई. में स्वामी योगानन्द के देहत्याग के समय सदानन्द की उपस्थिति का वर्णन करते हुए वे एक अन्य पत्र में लिखती हैं, "दृश्य बड़ा गम्भीर था। मृत्यु से शीतल शरीर – सिर पर गैरिक रेशम की पगड़ी और पूरा शरीर फूलों से ढँका हुआ, जिसे स्वामीजी तथा अन्य सबने उन पर बिखेर दिया था। सदानन्द ने उन्हें थोड़ा उठाकर पकड़ रखा था और सामने प्रज्वलन्त कपूर से आरती की जा रही थी। मकान के भीतर और बाहर दर्शनार्थी लोग भगवान के पुण्य नाम का जयघोष किये जा रहे थे। सदानन्द की मुखश्री बिल्कुल एक ऋषि के समान थी!... श्मशान में उनकी चिता सजायी गयी। सदानन्द बोले, 'आग के बीच उनका मुख मानो शिव का मुख है।' "

सदानन्द की कार्य-कुशलता तथा सेवा-निष्ठा में स्वामीजी का अगाध विश्वास था। १८९९ ई. में फैली प्लेग की महामारी के समय उन्होंने कलकत्ते के समग्र सेवा-प्रकल्प के नेतृत्व का भार सदानन्द को सौंप दिया था। रामकृष्ण मिशन द्वारा परिचालित वह सेवा-कार्य सचमुच ही एक ऐतिहासिक घटना है। स्वामी सदानन्द उसके प्रमुख निदेशक, भगिनी निवेदिता सचिव और स्वामी शिवानन्द, स्वामी आत्मानन्द तथा स्वामी नित्यानन्द उनके सहयोगी थे।

३१ मार्च (१८९९) को सदानन्द के नेतृत्व में कलकत्ते के प्लेग-निवारण का आन्दोलन आरम्भ हुआ। स्वामीजी के अनन्त मानव-प्रेम के उष्ण स्पर्श से सदानन्द का हृदय भी कितना द्रवीभूत हो उठा था, तत्कालीन कलकत्ता-वासियों को भी इसका परिचय मिला। डॉ. यदुनाथ सरकार जैसे इतिहासकार तथा डॉ. राधागोविन्द कर जैसे विख्यात समाज-सेवकों द्वारा लिपिबद्ध विवरणों को पढ़कर आज के लोगों को भी उसकी जानकारी प्राप्त होती है। आतंक से ग्रस्त सम्पन्न नागरिक लोग शहर छोड़कर भाग रहे थे, किंकर्तव्य-विमूढ़ असहाय सामान्य लोग अपने भाग्य को धिक्कारते हुए रो रहे थे और रोगग्रस्त लोग मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे थे – यही उस काल के कलकत्ते का परिदृश्य था। इस श्मशान-पुरी के बीच विवेकानन्द-शिष्य सदानन्द ही मानो आश्वासन तथा अभय के मूर्तिमान स्वरूप थे। उनकी उपस्थिति मात्र से ही लोगों की आँखों के अश्रु पुँछ जाते थे। पिछले वर्ष (१९९८) के मई में कलकत्ते में पहली बार प्लेग का आविर्भाव हुआ था। स्वामीजी उसी समय से उसकी इस भयावह परिणति के लिये तैयार थे। यह पूछे जाने पर कि इस विपुल सेवा-यज्ञ के लिये धन कहाँ से आयेगा, स्वामीजी ने कहा था – "जरूरत होने पर नये मठ की जमीन को बेचकर रुपयों का प्रबन्ध हो जायेगा।" वैसे ईश्वरेच्छा से उस समय इसकी आवश्यकता नहीं पड़ी थी।

१८९८ ई. के मई में प्लेग के प्रादुर्भाव के समय ही स्वामीजी ने रामकृष्ण मिशन की ओर से आम जनता के लिये बँगला तथा हिन्दी में एक सूचना-पत्रक बनवाया था। स्वामीजी के आदेश पर प्लेग-विध्वस्त कलकत्ता-वासियों के बीच इस विज्ञप्ति का वितरण हुआ था। सदानन्द तथा निवेदिता के अथक प्रयास से स्वामीजी की यह घोषणा कलकत्ते के घर-घर में पहुँचा दी गयी थी और इसमें कोई सन्देह नहीं कि इसी से जनता काफी कुछ आश्वस्त हो गयी थी। वह विज्ञप्ति इस प्रकार थी –

ॐ नमो भगवते रामकृष्णाय

कलकत्ता-निवासी भाइयो,

(१) हम आपके सुख में सुखी और दुख में दुखी हैं। इस दुर्दिन के समय आप सबका मंगल हो और रोग तथा

महामारी के भय से सहज ही छुटकारा मिले, यही हमारी चेष्टा तथा निरन्तर प्रार्थना रहेगी।

(२) इस महारोग के भय से छोटे-बड़े, धनी-गरीब – सभी व्यग्रता के साथ नगर छोड़कर चले जा रहे हैं। यदि सचमुच ही यह रोग हमारे बीच फैल जाता है, तो आप सबकी सेवा करते-करते प्राण तक चले जाने पर भी हम अपने को धन्य मानेंगे, क्योंकि आप सभी भगवान की मूर्ति हैं। आपकी सेवा तथा ईश्वर की उपासना में कोई भेद नहीं है। जो अहंकार, अन्धविश्वास अथवा अज्ञान के कारण इस बात को नहीं समझता, वह नि:सन्देह भगवान के समक्ष अपराधी तथा महापाप का भागी होगा।

(३) हमारी सविनय प्रार्थना है कि अकारण ही आप भय से उद्विग्न न हों। भगवान के ऊपर निर्भर होकर आप स्थिर चित्त से उपाय सोचें अथवा जो ऐसा कर रहे हैं, उनकी सहायता करें।

(४) भय कैसा? कलकत्ते में प्लेग आ गया है – जनता के मन में समाया हुआ यह भय निराधार है। अन्यान्य स्थानों में प्लेग की जैसी विकराल मूर्ति दीख पड़ी थी, ईश्वरेच्छा से कलकत्ते में वैसा कुछ नहीं हुआ है। सरकार भी हमारे प्रति विशेष अनुकूल है।

(५) आइये, हम समस्त वृथा भय को छोड़कर, भगवान की असीम दया में विश्वास रखते हुए, कमर कसकर कर्मक्षेत्र में उतर जायँ, शुद्ध और पवित्र भाव से जीवन यापन करें। रोग-महामारी आदि उनकी कृपा से न जाने कहाँ चली जायेंगी!

(६) (क) मकान, बरामदे, शरीर के वस्त्र, बिस्तर, नालियाँ आदि सर्वदा स्वच्छ रखें।

(ख) सड़ा और बासी अन्न न खाकर, ताजा तथा पौष्टिक आहार खाइये। दुर्बल शरीर में रोग होने की सम्भावना अधिक होती है।

(ग) मन को सदा प्रफुल्ल रखिये। मृत्यु तो केवल एक ही बार होती है, परन्तु केवल अपने मन के भय से मनुष्य बारम्बार मृत्यु-पीड़ा का भोग करता है।

(घ) जो लोग अनुचित उपायों से जीविकोपार्जन करते हैं, जो दूसरों का अमंगल करते हैं, भय उन्हें कभी नहीं छोड़ता। अतएव इस महा मृत्युभय के समय वे सारी वृत्तियाँ त्याग देनी चाहिये।

(ङ) गृहस्थ होने पर भी महामारी के दिनों में काम-क्रोध से विरत रहें।

(च) बाजार की अफवाहों पर विश्वास न करें।

(छ) अंग्रेज सरकार किसी को जबरन टीका नहीं लगवायेगी। जिसकी इच्छा होगी, वही टीका लगवायेगा।

(ज) जाति, धर्म तथा महिलाओं के पर्दा की रक्षा करते हुए, हमारी विशेष देखरेख में हमारे अस्पताल में रोगियों की चिकित्सा हो, इसके लिये हम कुछ उठा नहीं रखेंगे। धनी लोग (चाहें, तो) भाग जायँ, हम गरीब हैं और गरीबों की अन्तर्वेदना समझते हैं। जगदम्बा स्वयं ही असहाय की सहायक हैं। माँ अभय दे रही हैं। भय नहीं! भय नहीं!

(७) भाई, यदि आपका कोई सहायक न हो, तो अविलम्ब बेलूड़ मठ में भगवान रामकृष्ण के दासों को सूचित करें। शरीर के द्वारा जितनी भी सहायता हो सकेगी, उसमें कोई भूल न होगी। माँ की कृपा से आर्थिक सहायता भी हो सकती है।

विशेष द्रष्टव्य – महामारी के निवारणार्थ प्रतिदिन संध्या को हर मुहल्ले में नाम-संकीर्तन कीजिये।

कलकत्ते की बस्तियों से कूड़े-कचरे के अम्बार की सफाई करने के लिये उस समय वहाँ यथेष्ट मात्रा में झाड़ूदार या मेहतर उपलब्ध नहीं थे। जो थे, वे भी भय के कारण नगर छोड़कर भाग रहे थे। स्वामी सदानन्द हाथों में झाड़ू लिये गलियों में घूम-घूमकर कूड़े-कचरे की सफाई कर रहे थे। जिस गन्दगी की सफाई करने में काफी काल के अनुभवी मेहतर तक सक्षम नहीं हो पाते थे, सदानन्द खुशी-खुशी दिन-पर-दिन वैसे दुर्गन्धिपूर्ण कचरे के ढेरों की सफाई करते रहे। सड़ती हुई नाली या कोई कचरे का स्तूप देखकर सम्भव है कि कोई मेहतर नाक-मुँह को कपड़े से ढँकते हुए दूर जा रहा हो, परन्तु निर्द्वन्द्व संन्यासी प्रसन्नचित्त के साथ उस मेहतर के हाथ से कुदाल तथा टोकरी छीनकर आगे बढ़ जाते। यह दृश्य देखकर और भी अनेक शिक्षित युवक दौड़े आते – मेहतर लोग भी लज्जित होकर फिर से काम में लग जाते। सदानन्द सभी को, यहाँ तक कि भंगियों को भी बड़े प्रेम के साथ आलिंगन प्रदान करते। कहीं पर कोई प्लेग का रोगी असहाय पड़ा है – यह सुनते ही, सदानन्द – मूर्तिमान सेवा के रूप में तत्काल उसकी शय्या के पास दौड़ जाते और उसके पूरी तौर से नीरोग होने तक अपनी आहार-निद्रा भूलकर उसकी सेवा में लगे रहते। कलकत्ते के शिक्षित भद्रलोग उन दिनों इन सेवाव्रती सर्व-त्यागी संन्यासी को देखकर विस्मय से अवाक् रह गये थे। केवल कलकत्ते ही नहीं, १९०४ ई. के जाड़ों में जब भागलपुर में प्लेग की महामारी प्रगट हुई, तो वहाँ भी सदानन्द के नेतृत्व में रामकृष्ण मिशन द्वारा सेवा-कार्य परिचालित हुआ था। नि:शंक निर्भीक सदानन्द ने वहाँ भी आर्त-पीड़ित लोगों को अभयदान किया था।

स्वयं स्वामीजी की प्रेरणा तथा उपदेश ही रामकृष्ण मिशन के बहुमुखी सेवा-कार्यों के मूल में विद्यमान है। स्वामीजी

का यह सेवादर्श श्रीरामकृष्ण के 'शिवज्ञान से जीवसेवा' मंत्र की ही साधना है – वेदान्त के सर्वोच्च आदर्श का ही व्यावहारिक प्रयोग है। सदानन्द के जीवन में यह साधना कहाँ तक फलप्रसू हुई थी, केवल दो घटनाओं के उल्लेख से ही इसका अनुमान किया जा सकेगा। एक बार मार्ग से होकर जाते समय, एक बैल को पीटे जाते देखकर उन्होंने अपने शरीर पर उस प्रहार की पीड़ा का अनुभव किया था। एक अन्य समय वे रात को एक धर्मशाला में ठहरे हुए थे। सुबह होते ही उन्होंने देखा कि रात में वे एक कुष्ठरोगी के पास ही सोये थे। भय तथा आशंका के कारण पहले तो उन्होंने धर्मशाले का त्याग कर दिया, परन्तु थोड़ी दूर जाकर उन्हें बोध हुआ कि कुष्ठरोगी तो 'नारायण' है। तब वे उसी धर्मशाले में लौट आये और उस कुष्ट-रोगी के पास ही अपना आसन लगाकर रहने लगे। उन्होंने कई दिनों तक विशेष यत्नपूर्वक उस कुष्ट-रोगी की सेवा-सुश्रूषा भी की। एक बार वे एक चेचक के रोगी की सेवा कर रहे थे। रोगी, किसी कारण जब सहसा आग में गिर पड़ा, तो उस चेचक के रोगी के शरीर को तत्काल शीतलता प्रदान करने के लिये उन्होंने अपने शरीर से आलिंगन प्रदान किया था। इस प्रकार की कितनी ही घटनाएँ सदानन्द की अनुपम सेवा-साधना का साक्ष्य प्रस्तुत करती हैं। मनुष्य की सेवा मात्र मनुष्य-बोध पर नहीं, अपितु 'सर्वभूतों में ईश्वर-बोध' की नींव पर आधारित हो, तभी ऐसी सेवा करना सम्भव है।

दुखी असहाय आर्त नारायणों की सेवा में लगे मिशन की विविध गतिविधियों में स्वामीजी के प्रिय गुरुभाई तथा सहचर सारदानन्दजी का उत्साह तथा उद्यम ही साधु-कर्मियों की अथक कर्म-साधना को प्रेरणा प्रदान करता था। सदानन्द इस समस्त उद्यमों के प्रारम्भ से ही स्वामी सारदानन्द के विश्वस्त अनुगामी थे। इसीलिये मिशन के सेवाकार्य के इतिहास में सदानन्द चिरकाल तक स्मरणीय बने रहेंगे। सदानन्द का शरीर अकाल ही टूट गया था और वे दीर्घजीवी नहीं हो सके थे। विभिन्न कालों में आरम्भ हुए नाना प्रकार की छोटी-बड़ी सेवा-परियोजनाओं के संचालन में उन्हें जो अमानुषिक परिश्रम करना पड़ता था, उसी की प्रतिक्रिया के रूप में उनके शरीर की यह दशा हुई थी। सेवा का सुयोग मिलने पर, वे उसे छोड़ते नहीं थे। 'गोपालेर माँ' ने जब १९०३ ई. के दिसम्बर से लेकर अपने जीवन के अन्तिम कुछ दिन बागबाजार में निवेदिता के घर में निवास किया था, तब उनकी सेवा-सुश्रूषा में भी सदानन्द ने निवेदिता की सभी प्रकार से सहायता की थी। श्रीरामकृष्ण-भावधारा की इन महान् वृद्धा की सेवा में जैसे वे अक्लान्त भाव से लगे थे, वैसी ही निष्ठा के साथ वे चेचक या हैजे से रोगाक्रान्त अज्ञात दीन-दुखियों की भी सेवा में लग जाते थे। यही सदानन्द के चरित्र का वैशिष्ट्य था।

१९०२ ई. की ४ जुलाई को स्वामीजी के लीला-संवरण के दिन सदानन्द मठ में ही उपस्थित थे। उन्हें लगा कि उनके जीवन की समस्त आशा तथा आकांक्षा और साधन तथा सिद्धि के आदर्श की मूर्ति मानो आज विघटित हो गयी! निर्निमेष दृष्टि के साथ प्रज्वलित चिताग्नि की ओर देखते हुए निस्तब्ध भाव से वे कितनी ही बातों का स्मरण कर रहे थे! हाथरस से लेकर बेलूड़ मठ तक के सुदीर्घ २४ वर्ष के विविध दृश्य चलचित्र के समान उनके मानस-पटल से होकर गुजरने लगे। उन्हें बारम्बार अपने गुरुदेव की यह आशीर्वाणी याद आ रही थी – एक दिन स्वामीजी ने प्रेमानन्दजी से कहा था, "बाबूराम, मेरे शिष्यगण यदि हजार बार नरक में चले जायँ, तो भई मैं हजार बार उनका हाथ पकड़कर निकालूँगा। यह बात यदि सत्य न हो, तो ठाकुर आदि सब कुछ मिथ्या समझना।"

सदानन्द, उस दिन गंगातट पर बैठकर, अपने गुरुदेव की कृपामयी मूर्ति का स्मरण करते हुए अपने हृदय-स्पन्दन में उन्हीं के कण्ठ-स्वर की प्रतिध्वनि सुनकर चुपचाप आँसू बहाते रहे। श्रीगुरु के अन्तर्धान हो जाने के बाद उन्हें मातृ-पितृ-हीन बालक के समान कहते सुना गया, "मैंने तो स्वामीजी की सेवा करने हेतु जन्म लिया था। स्वामीजी चले गये, अब मुझे भी देह रखने की कोई आवश्यकता नहीं है।"

स्वामीजी के महाप्रयाण के बाद २८ जुलाई १९०२ ई. को भगिनी निवेदिता ने मिस मैक्लाउड को जो पत्र लिखा था, उसमें से कुछ अंश यहाँ उद्धृत करने योग्य है। उसका भावानुवाद निम्नलिखित है –

"सदानन्द बड़े अद्भुत हैं।... उन्होंने समझ लिया था कि कुछ घटने वाला है, क्योंकि स्वामीजी की 'करुणा अस्वाभाविक रूप से बढ़ गयी थी' – वे बड़ी कोमल करुण दृष्टि से देखते, अपने आप में मन्द हास्य से परिपूर्ण रहते – ब्रह्मानन्द ने ठीक ही कहा था, 'अब वे ठाकुर के समान ही चले जायेंगे, क्योंकि मैं प्रतिदिन ही उनके भीतर ठाकुर का दर्शन पा रहा हूँ।'... सदानन्द जानते हैं कि वे सर्वदा ही हमारे बीच उपस्थित हैं। यदि हम लोग अनुचित भी करना चाहें, तो वे रक्षा करेंगे। सदानन्द ने ऋषीकेश में उनसे संन्यास-दीक्षा ली थी। उस समय एक दिन उन्होंने पूछा था, 'स्वामीजी, यदि मेरा पतन हो जाय, तो?' उन्होंने तत्काल उत्तर दिया था, 'हजार पतन हो, इससे कुछ भी आता-जाता नहीं। वह मेरा उत्तरदायित्व है, मैंने ही तुम्हें चुना है, तुमने मुझे नहीं चुना।' "

❖ (क्रमशः) ❖

कठोपनिषद्-भाष्य (४)

(सनातन वैदिक धर्म के ज्ञानकाण्ड को उपनिषद् कहते हैं। हजारों वर्ष पूर्व भारत में जीव-जगत् तथा उससे सम्बन्धित गम्भीर विषयों पर प्रश्न उठाकर उनकी जो मीमांसा की गयी थी, इनमें उन्हीं का संकलन है। श्रीशंकराचार्य ने वैदिक धर्म की पुनः स्थापना हेतु इन पर सहज-सरस भाष्य लिखकर अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था। स्वामी विदेहात्मानन्द द्वारा किया हुआ कठोपनिषद्-भाष्य का सरल अनुवाद प्रस्तुत है। भाष्य में आये मूल श्लोक के शब्दों को रेखांकित कर दिया गया है और कठिन सन्धियों को खोलकर सरल रूप देने का प्रयास किया गया है, ताकि नव-शिक्षार्थियों को तात्पर्य समझने में सुविधा हो। –सं.)

स्वर्गे लोके न भयं किञ्चनास्ति
न तत्र त्वं न जरया बिभेति ।
उभे तीर्त्वा अशनायापिपासे
शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके ।।१२।।

अन्वयार्थ– दूसरा वर माँगते हुए नचिकेता ने कहा – **स्वर्गे लोके** स्वर्गलोक में **किम् चन्** कोई भी **भयम्** भय **न अस्ति** नहीं है, **तत्र** वहाँ **त्वम् न** आप नहीं हैं, (वहाँ कोई) **जरया** बुढ़ापे से **न विभेति** भयभीत नहीं होता; (वहाँ जाने वाला) **अशनाया-पिपासे** भूख तथा प्यास – **उभे** दोनों को **तीर्त्वा** पार करके **शोक-अति-गः** शोक के अतीत जाकर **स्वर्गलोके** दिव्य स्वर्गलोक में **मोदते** आनन्द भोगता है।

भावार्थ – नचिकेता ने दूसरा वर माँगते हुए कहा – स्वर्गलोक में कोई भी भय नहीं है, वहाँ आप (मृत्यु) नहीं हैं, (वहाँ कोई) बुढ़ापे से भी भयभीत नहीं होता; (वहाँ जानेवाला) भूख तथा प्यास – दोनों को पार करके शोक के परे होकर स्वर्गलोक में दिव्य आनन्द मनाता है।

भाष्य – नचिकेता उवाच – स्वर्गे लोके रोग-आदि-निमित्तं भयं किंचन किंचित् अपि न अस्ति । न तत्र त्वं मृत्यो सहसा प्रभवसि, अतो जरया युक्त इह लोक इव त्वत्तः न बिभेति कुतश्चित् तत्र । किं च उभे अशनाया-पिपासे तीर्त्वा अतिक्रम्य, शोकम् अतीत्य गच्छति इति शोकातिगः सन् मानसेन दुःखेन वर्जितः मोदते हृष्यति स्वर्गलोके दिवि ।।

भाष्य-अनुवाद – नचिकेता ने कहा – स्वर्गलोक में रोग आदि के निमित्त से थोड़ा-सा भी भय नहीं होता। हे यम, वहाँ आप भी सहसा आकर प्रकट नहीं होते; अतः वृद्धावस्था से युक्त इस लोक के समान वहाँ कोई भी आपसे भयभीत नहीं होता। इसके अतिरिक्त भूख तथा प्यास – दोनों से पार हो जाने के कारण और मानसिक दुःखों से मुक्त हो जाने के फलस्वरूप व्यक्ति स्वर्गलोक में आनन्द मनाता है।

स त्वमग्निँ स्वर्ग्यमध्येषि मृत्यो
प्रब्रूहि त्वँ श्रद्दधानाय मह्यम् ।
स्वर्गलोका अमृतत्वं भजन्त
एतद् द्वीतीयेन वृणे वरेण ।।१३।।

अन्वयार्थ– **मृत्यो** हे यमराज, **सः त्वम्** आप **स्वर्ग्यम्** स्वर्ग-प्राप्ति के साधनभूत (उस) **अग्निम्** अग्निविद्या को **अध्येषि** जानते हैं, (जिसकी सहायता से) **स्वर्गलोकाः** स्वर्गलोक की कामना से यज्ञ करनेवाले लोग **अमृतत्त्वम्** अमरत्व या देवत्व **भजन्ते** प्राप्त करते हैं। **मह्यम्** मुझ **श्रद्दधानाय** श्रद्धावान को **त्वम्** आप (वह) **प्रब्रूहि** बताइये – **द्वितीयेन** द्वितीय **वरेण** वर के द्वारा (मैं) **एतत्** इसी अग्निविद्या को **वृणे** माँगता हूँ।

भावार्थ – हे यमराज, आप स्वर्ग-प्राप्ति के साधनभूत (उस) अग्निविद्या से परिचित हैं, (जिसकी सहायता से) स्वर्गलोक की कामनावाले यजमान लोग अमरत्व या देवत्व प्राप्त करते हैं। मुझ श्रद्धावान को आप (वह) बताइये – द्वितीय वर के द्वारा (मैं) इसी अग्निविद्या को माँगता हूँ।

भाष्य – एवम् गुण-विशिष्टस्य स्वर्गलोकस्य प्राप्ति-साधन-भूतम् अग्निं स्वर्ग्यं स त्वं मृत्युः अध्येषि स्मरसि, जानासि इति अर्थः । हे मृत्यो, यतः तं प्रब्रूहि कथय श्रद्दधानाय श्रद्धावते मह्यं स्वर्गार्थिने । येन अग्निना चितेन स्वर्गलोकाः स्वर्गो लोको येषां ते स्वर्गलोकाः यजमानाः अमृतत्वम् अमरणतां देवत्वं भजन्ते प्राप्नुवन्ति, तत् एतत् अग्नि-विज्ञानं द्वितीयेन वरेण वृणे ।।

भाष्य-अनुवाद – हे यमराज, चूँकि आप ऐसे विशिष्ट गुणवाले स्वर्गलोक की प्राप्ति के साधनभूत अग्नि के विषय में स्मरण अर्थात् जानकारी रखते हैं, अतः मुझ स्वर्ग-प्राप्ति के इच्छुक श्रद्धालु के प्रति उसे कहिये। जिस अग्नि का चयन (पूजन) किये जाने पर स्वर्गार्थी यजमान लोग स्वर्गलोक में जाकर देवत्व को प्राप्त करते हैं, उसी अग्निविज्ञान को मैं दूसरे वर के द्वारा माँगता हूँ।

प्र ते ब्रवीमि तदु मे निबोध
स्वर्ग्यमग्निं नचिकेतः प्रजानन् ।
अनन्तलोकाप्तिमथो प्रतिष्ठां
विद्धि त्वमेतं निहितं गुहायाम् ।।१४।।

अन्वयार्थ– यमराज बोले – **नचिकेत**ः हे नचिकेता, **स्वर्ग्यम्** स्वर्ग-प्राप्ति के उपायभूत **अग्निम्** अग्नि का स्वरूप **प्रजानन्** (मैं) विशेष रूप से जानता हूँ, **ते** तुम्हें, **प्रब्रवीमि** समुचित रूप से बताता हूँ। **तत् उ** उसे **मे** मुझसे **निबोध**

ध्यानपूर्वक समझ लो; **त्वम्** तुम (मेरे द्वारा बतायी गयी) **एतम्** इस अग्नि को **अनन्त-लोक-आप्तिम्** स्वर्गलोक की प्राप्ति का उपाय, **प्रतिष्ठाम्** अखिल जगत् का आश्रय **अथो** तथा **गुहायाम्** ज्ञानियों की बुद्धिरूपी गुहा में **निहितम्** स्थित **विद्धिम्** समझना।

भावार्थ – यमराज बोले – हे नचिकेता, स्वर्ग-प्राप्ति के उपायभूत अग्नि का स्वरूप (मैं) विशेष रूप से जानता हूँ, तुम्हें समुचित रूप से बताता हूँ। उसे मुझसे ध्यानपूर्वक समझ लो; तुम (मेरे द्वारा बतायी गयी) इस अग्नि को स्वर्गलोक की प्राप्ति का उपाय, अखिल जगत् का आश्रय तथा (ज्ञानियों की) बुद्धिरूपी गुहा में स्थित समझना।

भाष्य – मृत्योः प्रतिज्ञेयम् – प्र ते तुभ्यं प्रब्रवीमि; यत् त्वया प्रार्थितं तदु मे मम वचसः निबोध बुध्यस्व एकाग्र-मनाः सन्। स्वर्ग्यं स्वर्गाय हितं स्वर्ग-साधनम् अग्निं हे नचिकेतः प्रजानन् विज्ञातवान् सन् अहम् इति अर्थः। प्रब्रवीमि तत् निबोध इति च शिष्य-बुद्धि-समाधानार्थं वचनम्।

भाष्य-अनुवाद – यमराज ने प्रतिज्ञा की – हे नचिकेता, तुम्हारे द्वारा जो माँगा गया है, उस स्वर्ग की प्राप्ति करानेवाले, स्वर्ग के साधनभूत अग्नि को मैं जानता हूँ; मैं उसे बताता हूँ; तुम एकाग्र-चित्त होकर मेरे शब्दों के द्वारा उसे समझ लो। "मैं उसे बताता हूँ और उसे समझ लो" – कहने का उद्देश्य शिष्य की बुद्धि को धारणा-योग्य या एकाग्र बनाना है।

अधुना अग्निं स्तौति – अनन्त-लोक-आप्तिं स्वर्गलोक-फलप्राप्ति-साधनम् इति एतत्, अथो अपि प्रतिष्ठाम् आश्रयं जगतः विराट्-रूपेण, तम् एतम् अग्निं मया उच्यमानं विद्धि विजानीहि त्वम् – निहितं गुहायाम् विदुषां बुद्धौ निविष्टम् इति अर्थः ।।

अब अग्नि की स्तुति करते हैं – यह स्वर्गलोक की प्राप्ति का साधन है। साथ ही विराट् के रूप में यह जगत् का आश्रय भी है। मेरे द्वारा कही जा रही इस अग्नि को तुम ज्ञानी जनों की बुद्धि में निहित या स्थित जानो।

लोकादिमग्निं तमुवाच तस्मै
या इष्टका यावतीर्वा यथा वा ।
स चापि तत्प्रत्यवदद्यथोक्त-
मथास्य मृत्युः पुनरेवाह तुष्टः ।।१५।।

अन्वयार्थ – (यमराज ने) **तस्मै** नचिकेता को **लोक-आदिम्** जगत् की आदिभूत **तम्** उस पूछी गयी **अग्निम्** अग्नि के विषय में **उवाच** कहा; **याः** जिस प्रकार के, **यावतीः वा** या जितनी संख्या में, **इष्टकाः** ईंटों का (यज्ञवेदी के लिये चयन किया जाता है) **यथा वा** और जिस प्रकार [अग्निचयन, अग्नि-आधान, समित्सज्जा करनी पड़ती है] (वह सब भी बताया)। **सः च अपि** और नचिकेता ने भी **तत्** यम द्वारा बताये गये सारे विषय **यथा-उक्तम्** यथावत् **प्रति-अवदत्** दुहरा दिये। **अथ** तदनन्तर **मृत्युः** यम ने (नचिकेता की) **अस्य** इस पुनरुक्ति पर **तुष्ट** सन्तुष्ट होकर **पुनः एव** फिर **आह** कहा।

भावार्थ – यमराज ने नचिकेता को, उसके द्वारा पूछे गये जगत् का आदिभूत अग्नि के विषय में कहा; जिस प्रकार या जितनी संख्या में, ईंटों का (यज्ञवेदी के लिये चयन किया जाता है) और जैसे (अग्निचयन, काष्ठ-सज्जा आदि करनी पड़ती है, वह सब भी बताया)। नचिकेता ने भी यम द्वारा बताये गये सारे विषय यथावत् दुहरा दिया। तदनन्तर यम ने (नचिकेता की) इस पुनरुक्ति पर सन्तुष्ट होकर फिर कहा।

भाष्य – इदं श्रुतेः वचनम् – लोकादिं लोकानाम् आदिं प्रथम-शरीरित्वात् अग्निं तं प्रकृतं नचिकेतसा प्रार्थितम् उवाच उक्तवान् मृत्युः तस्मै नचिकेतसे। किं च, या इष्टकाः चेतव्याः स्वरूपेण, यावतीः वा संख्यया, यथा वा चीयते अग्निः येन प्रकारेण – सर्वम् एतत् उक्तवान् इति अर्थः। स चापि नचिकेताः तत् मृत्युना उक्तं यथावत् प्रत्यवदत् प्रत्ययेन अवदत् प्रति-उच्चारितवान्। अथ अस्य प्रति-उच्चारणेन तुष्टः सन् मृत्युः पुनरेवाह वर-त्रय-व्यतिरेकेण अन्यं वरं दित्सुः।।

भाष्य-अनुवाद – यह उपनिषद् की उक्ति है – यमराज ने उसे (नचिकेता को) उस अग्नि के विषय में बताया, जिसका प्रकरण चल रहा है और जिसके लिये नचिकेता ने प्रार्थना की थी, जो (अग्नि) प्रथम शरीरधारी होने के कारण (विराट् के रूप में) विश्व का आदिभूत है; इसके अतिरिक्त, (यज्ञवेदी के लिये) जिस तरह (आकार) की, जितनी संख्या में ईंटों का संग्रह किया जाता है तथा जिस प्रकार अग्नि को सजाया जाता है – यह सब उन्होंने बताया। इसका यही तात्पर्य है। नचिकेता ने भी यमराज को उसे यथावत् (शब्दशः) बोधपूर्वक दुहरा दिया। इस प्रति-आवृत्ति पर प्रसन्न होकर यमराज ने पुनः कहा कि वे उन तीन वरों के अतिरिक्त एक अन्य वर भी देना चाहते हैं।।

तमब्रवीत्प्रीयमाणो महात्मा
वरं तवेहाद्य ददामि भूयः ।
तवैव नाम्ना भवितामग्निः
सृङ्कां चेमामनेकरूपां गृहाण ।।१६।।

अन्वयार्थ – **प्रीयमाणः** प्रसन्न होकर **महा-आत्मा** उदारचेता यमराज ने **तम्** उस (नचिकेता) से **अब्रवीत्** कहा – **इह** इस सन्तुष्टि के कारण **अद्य** आज (मैं) **तव** तुम्हें **भूयः** एक अतिरिक्त अर्थात् चौथा **वरम्** वर **ददामि** देता हूँ – (मेरे द्वारा कही गयी) **अयम्** यह **अग्निः** अग्नि **तव एव** तुम्हारे ही **नाम्ना** नाम से **भविता** प्रसिद्ध होगी; **च** और **इमाम्** यह **अनेक-रूपाम्** अति सुन्दर **सृंकाम्** माला (भी) **गृहाण** ग्रहण करो।

भावार्थ – उदारचेता यमराज ने प्रसन्न होकर उस (नचिकेता)

से कहा – इस सन्तुष्टि के कारण आज मैं तुम्हें एक अतिरिक्त अर्थात् चौथा वर (भी) देता हूँ – (मेरे द्वारा कही गयी) यह अग्नि (अब) तुम्हारे ही नाम से प्रसिद्ध होगी और साथ ही यह अति सुन्दर माला (भी) ग्रहण करो।

भाष्य – कथम्? तं नचिकेतसम् अब्रवीत् प्रीयमाणः शिष्यस्य योग्यतां पश्यन् प्रीयमाणः प्रीतिम् अनुभवन् महात्मा अक्षुद्र-बुद्धिः वरं तव चतुर्थम् इह प्रीति-निमित्तम् अद्य इदानीं ददामि भूयः पुनः प्रयच्छामि । तवैव नाचिकेतसः नाम्ना अभिधानेन प्रसिद्धः भविता मया उच्यमानः अयम् अग्निः । किं च, सृङ्कां शब्दवर्ती रत्नमयीं मालाम् इमाम् अनेकरूपां विचित्रां गृहाण स्वीकुरु। यत् वा, सृङ्काम् अकुत्सितां गतिं कर्ममयीं गृहाण। अन्यत् अपि कर्म-विज्ञानम् अनेक-फल-हेतुत्वात् स्वीकुरु इत्यर्थः।।

भाष्य-अनुवाद – कैसे कहा? संकीर्ण बुद्धि से रहित **महात्मा** (यमराज) ने, शिष्य (नचिकेता) की योग्यता को देखकर **प्रीयमाणः** प्रीति या प्रसन्नता का अनुभव करते हुए **तम्** उससे **अब्रवीत्** कहा – **इह अद्य** यहाँ, अब इस प्रसन्नता के कारण मैं तुम्हें **भूयः** पुनः एक चौथा वर प्रदान करता हूँ; मेरे द्वारा कही जा रही **अयम् अग्निः** यह अग्नि, हे नचिकेता, **तवैव** तुम्हारे ही **नाम्ना** नाम से प्रसिद्ध **भविता** होगी। इसके अतिरिक्त इस **अनेकरूपां** अनेक रूप-रंगों वाली, ध्वनियुक्त, रत्नों से बनी **सृङ्काम्** माला को **गृहाण** स्वीकार करो ।। अथवा **सृङ्काम्** अनिन्दित कर्ममयी गति को भी कहते हैं। तात्पर्य हुआ – इसके अतिरिक्त अनेक फलों के हेतु होने से कर्म-विज्ञान को भी स्वीकार करो ।।

❖ (क्रमशः) ❖

विवेक-चूडामणि

– श्री शंकराचार्य

शिष्य उवाच –

भ्रमेणाप्यन्यथा वाऽस्तु जीवभावः परात्मनः ।
तदुपाधेरनादित्वान्नानादेर्नाश इष्यते ।।१९२।।

अन्वय – शिष्यः उवाच, परात्मनः जीवभावः भ्रमेण वा अन्यथा अपि अस्तु। तत्-उपाधेः अनादित्वात् अनादेः नाशः न इष्यते।

अर्थ – शिष्य ने कहा – भ्रम के कारण अथवा किसी अन्य कारण से परमात्मा को जिस जीवभाव की प्राप्ति हुई है, वह अविद्या-रूपी उपाधि अनादि मानी जाती है। और अनादि वस्तु का नाश तो कभी सम्भव ही नहीं है!

अतोऽस्य जीवभावोऽपि नित्या भवति संसृतिः ।
न निवर्तेत तन्मोक्षः कथं मे श्रीगुरो वद ।।१९३।।

अन्वय – अतः अस्य जीवभावः अपि न निवर्तेत, संसृतिः नित्या भवति। कथं मे तत् मोक्षः (हे) श्रीगुरो, वद !

अर्थ – अतएव आत्मा का जीवभाव (कल्पित हो या सत्य हो) कभी दूर होने वाला नहीं है और जन्म-मृत्यु-रूपी संसार भी सदा बना रहेगा। तो फिर, हे श्रीगुरु, मुझे बताइये कि इस जीवभाव से मेरी मुक्ति कैसे होगी?

श्रीगुरुरुवाच –

सम्यक्पृष्टं त्वया विद्वन्सावधानेन तच्छृणु ।
प्रामाणिकी न भवति भ्रान्त्या मोहितकल्पना ।।१९४।।

अन्वय – श्रीगुरुः उवाच – विद्वन्, त्वया सम्यक् पृष्टं, तत् सावधानेन शृणु। भ्रान्त्या मोहित-कल्पना प्रामाणिकी न भवति।

अर्थ – श्रीगुरु बोले – हे विद्वान् शिष्य, तूने उत्तम प्रश्न किया, उसका उत्तर सावधानी से सुन। भ्रम के कारण उत्पन्न मोहाच्छन्न व्यक्ति की 'मैं जीव हूँ' – यह मिथ्या कल्पना प्रमाण-सिद्ध नहीं है।

भ्रान्तिं विना त्वसङ्गस्य निष्क्रियस्य निराकृतेः ।
न घटेतार्थसम्बन्धो नभसो नीलतादिवत् ।।१९५।।

अन्वय – भ्रान्तिं विना तु असङ्गस्य निष्क्रियस्य निराकृतेः अर्थ-सम्बन्धः न घटेत्, नभसः नीलता-आदिवत्।

अर्थ – जैसे भ्रम के बिना आकाश में नीलिमा आदि नहीं दीख सकती; वैसे ही अज्ञान के बिना असंग, निष्क्रिय, निराकार आत्मा का विषय के साथ सम्बन्ध नहीं हो सकता।

स्वस्य द्रष्टुर्निर्गुणस्याक्रियस्य
प्रत्यग्बोधानन्दरूपस्य बुद्धेः ।
भ्रान्त्या प्राप्तो जीवभावो न सत्यो
मोहापाये नास्त्यवस्तुस्वभावात् ।।१९६।।

अन्वय – **द्रष्टुः** निर्गुणस्य अक्रियस्य प्रत्यग्-बोध-आनन्द-रूपस्य स्वस्य **बुद्धेः** भ्रान्त्या प्राप्तः जीवभावः, न सत्यः। मोह-अपाये अवस्तु-स्वभावात् न अस्ति।

अर्थ – साक्षी, निर्गुण, निष्क्रिय तथा प्रत्येक जीव के अन्तर में बोध तथा आनन्द के रूप में विद्यमान आत्मा में बुद्धि भ्रम से ही जीवभाव की प्राप्ति हुई है। वह सत्य नहीं है। (यह भ्रम) अवस्तु होने के कारण मोह के दूर हो जाने पर यह जीवभाव भी नहीं रह जाता।

यावद्भ्रान्तिस्तावदेवास्य सत्ता
मिथ्याज्ञानोज्जृम्भितस्य प्रमादात् ।
रज्ज्वां सर्पो भ्रान्तिकालीन एव
भ्रान्तेर्नाशे नैव सर्पोऽपि तद्वत् ।।१९७।।

अन्वय – अस्य मिथ्या-ज्ञान-उज्जृम्भितस्य सत्ता यावत् प्रमादात् भ्रान्तिः तावत् एव । रज्ज्वां सर्पः भ्रान्ति-कालीनः एव, भ्रान्तेः नाशे सर्पः अपि न एव तद्वत् ।

अर्थ – जैसे भ्रम के समय ही रस्सी में साँप दिखता है; भ्रम के दूर हो जाने पर साँप भी लुप्त हो जाता है; वैसे ही, जब तक प्रमादवश होनेवाली भ्रान्ति रहती है, तभी तक यह मिथ्या ज्ञान से उत्पन्न जीवभाव की सत्ता टिकती है।

अनादित्वमविद्यायाः कार्यस्यापि तथेष्यते ।
उत्पन्नायां तु विद्यायामाविद्यकमनाद्यपि ।।१९८।।
प्रबोधे स्वप्नवत्सर्वं सहमूलं विनश्यति ।
अनाद्यपीदं नो नित्यं प्रागभाव इव स्फुटम् ।।१९९।।

अन्वय – अविद्यायाः तथा कार्यस्य अपि अनादित्वम् इष्यते । विद्यायां तु उत्पन्नायां अनादि अपि अविद्यकम् । प्रबोधे स्वप्नवत्, सर्वं सहमूलं विनश्यति । इदं अनादि-अपि, प्राग्-अभावः इव, नो नित्यं स्फुटम् ।

अर्थ – अविद्या तथा उसके कार्यों (अन्तःकरण, जगत् आदि) का भी अनादित्व स्वीकार किया गया है। परन्तु विद्या (ज्ञान) उत्पन्न हो जाने पर; मूल अविद्या तथा उसके (अन्तःकरण आदि) सारे कार्य, अनादि होने पर भी, वैसे ही नष्ट हो जाते हैं, जैसे जागने पर स्वप्न लुप्त हो जाता है। यह (अविद्या से उत्पन्न) सारा विश्वप्रपंच अनादि होकर भी 'प्राग्-अभाव'* के समान नित्य नहीं है, ऐसी स्पष्ट उपलब्धि होती है।

अनादेरपि विध्वंसः प्रागभावस्य वीक्षितः ।
यद्बुद्ध्युपाधिसम्बन्धात्परिकल्पितमात्मनि ।।२००।।
जीवत्वं तु ततोऽन्यस्तु स्वरूपेण विलक्षणः ।
सम्बन्धस्त्वात्मनो बुद्ध्या मिथ्याज्ञानपुरःसरः।।२०१।।

अन्वय – अनादेः प्राग्-अभावस्य अपि विध्वंसः वीक्षितः । बुद्धि-उपाधि-सम्बन्धात् यत् आत्मनि परिकल्पितम्, (तत्) तु जीवत्वम् । तु अन्यः स्वरूपेण ततः विलक्षणः । बुद्ध्या स्वात्मनः सम्बन्धः मिथ्या-ज्ञान-पुरःसरः ।

अर्थ – प्राग्-अभाव अनादि होने पर भी, उसका विध्वंस देखने में आता है। बुद्धि-उपाधि के साथ सम्बन्ध से आत्मा में जीवभाव परिकल्पित हुआ है, परन्तु अन्य (शुद्ध आत्मा) स्वरूपतः उस (जीव) से भिन्न है। बुद्धि के साथ आत्मा का सम्बन्ध मिथ्या ज्ञान के फलस्वरूप है।

विनिवृत्तिर्भवेत्तस्य सम्यग्ज्ञानेन नान्यथा ।
ब्रह्मात्मैकत्वविज्ञानं सम्यग्ज्ञानं श्रुतेर्मतम् ।।२०२।।

अन्वय – सम्यक्-ज्ञानेन, तस्य विनिवृत्तिः भवेत्, न अन्यथा । ब्रह्म-आत्मा-एकत्व-विज्ञानम् सम्यक्-ज्ञानम् – श्रुतेः मतम् ।

अर्थ – सम्यक् ज्ञान से ही इस (बुद्धि-आत्मा के सम्बन्ध रूपी) अज्ञान की पूर्ण निवृत्ति होती है, किसी अन्य उपाय से नहीं। श्रुति के मतानुसार – ब्रह्म तथा आत्मा के एकत्व का विज्ञान ही सम्यक् ज्ञान है।

तदात्मानात्मनोः सम्यग्विवेकेनैव सिध्यति ।
ततो विवेकः कर्तव्यः प्रत्यगात्मासदात्मनोः ।।२०३।।

अन्वय – तत् आत्मा-अनात्मनोः सम्यक् विवेकेन एव सिध्यति। ततः प्रत्यग्-आत्मा-असत्-आत्मनोः विवेकः कर्तव्यः।

अर्थ – वह (सम्यक् ज्ञान) आत्मा तथा अनात्मा के बीच सम्यक् विवेक के द्वारा ही सिद्ध होता है। अतः अन्तरात्मा तथा मिथ्या आत्मा – दोनों के बीच विवेक करना उचित है।

जलं पंकवदत्यन्तं पंकापाये जलं स्फुटम् ।
यथा भाति तथात्मापि दोषाभावे स्फुटप्रभः।।२०४।।

अन्वय – अत्यन्तं पंकवत् जलम्, पंक-अपाये यथा स्फुटं जलं भाति, तथा आत्मा अपि दोषाभावे स्फुटप्रभः ।

अर्थ – जैसे अत्यन्त कीचड़ से घुला हुआ जल (मलिन दिखता है, परन्तु) कीचड़ के दूर हो जाने पर वही जल स्वच्छ दिखता है, वैसे ही आत्मा भी अज्ञान दोष के दूर हो जाने पर स्पष्ट रूप से प्रकाशित होने लगता है।

असन्निवृत्तौ तु सदात्मना स्फुटं
प्रतीतिरेतस्य भवेत्प्रतीचः ।
ततो निरासः करणीय एव
सदात्मनः साध्वहमादिवस्तुनः ।।२०५।।

अन्वय – असत्-निवृत्तौ तु एतस्य प्रतीचः सत्-आत्मना स्फुटम् प्रतीतिः भवेत् । ततः सत्-आत्मनः अहम्-आदि-वस्तुनः साधु निरासः एव करणीयः ।

अर्थ – असत् (उपाधियों) की निवृत्ति हो जाने पर ही, इस प्रत्यगात्मा (अन्तरात्मा) की सत्-स्वरूप आत्मा के रूप में स्पष्ट अनुभूति होती है। अतएव व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह अपने सत्-स्वरूप आत्मा से अहंकार आदि वस्तुओं को भलीभाँति निकाल डाले।

अतो नायं परात्मा स्याद्विज्ञानमयशब्दभाक् ।
विकारित्वाज्जडत्वाच्च परिच्छिन्नत्वहेतुतः ।
दृश्यत्वाद्व्यभिचारित्वान्नानित्यो नित्य इष्यते ।।२०६

अन्वय – अतः अयम् विज्ञानमय-शब्दभाक् परात्मा न स्यात्, विकारित्वात् जडत्वात् च परिच्छिन्न-हेतुतः दृश्यत्वाद्-व्यभिचारित्वात् अनित्यः, नित्यः न इष्यते ।

अर्थ – अतः यह विज्ञानमय नाम से वर्णित होनेवाला कोश भी परम आत्मा नहीं हो सकता; क्योंकि यह विकारवान् (परिवर्तनशील), जड़, परिछिन्न (सीमाबद्ध), दृश्य (इन्द्रियग्राह्य वस्तु), अस्थिर होने के कारण अनित्य है; (अतः) यह नित्य (आत्मा) नहीं हो सकता।

❖ **(क्रमशः)** ❖

* प्राग्-अभाव – किसी वस्तु के उत्पन्न होने के पूर्व उसका अभाव होता है और यह अभाव अनादि होता है। वस्तु उत्पन्न होते ही उसके प्राग्-अभाव का नाश हो जाता है।

मानव-वाटिका के सुरभित पुष्प

डॉ. शरद् चन्द्र पेंढारकर

१८४. बहता पानी बने समन्दर

वियतनाम के पूर्व राष्ट्रपति हो-ची-मिन्ह की आयु नौ वर्ष की थी। परीक्षा में फेल होने के बाद उन्हें इतनी निराशा हुई कि उनके मन में बार-बार आत्महत्या का विचार उठने लगा। माता-पिता ने उन्हें बहुत समझाया, पर कोई लाभ नहीं हुआ।

एक रात वे चुपचाप घर से भाग निकले। सुबह एक गाँव में पहुँचे, तो वहाँ उन्होंने एक भिक्षु को मधुर सुर में एक गीत गाते देखा। गीत सुनने के लिये वे ठहर गये –

क्यों सरिता-जल निरमल होता?
क्योंकि सदा वह बहता रहता।
जल में सड़न न होती है क्यों?
क्योंकि सदा वह बहता रहता।
क्यों उसको कोई रोक न पाता?
क्योंकि सदा वह बहता रहता।
पानी बनता नदी और फिर
क्यों कर वह समुद्र बन जाता है?
क्योंकि सदा वह बहता रहता।
इस जीवन में कभी रुको मत
लक्ष्य सतत ही बहते रहना।
बूंदों से समुद्र बन जाओ,
बहते रहना, बढ़ते रहना।।

हो-ची-मिन्ह ने गीत के शब्दों पर विचार किया, तो उन्हें जीवन गढ़ने का मानो एक गुरुमंत्र ही मिल गया। तत्काल उनकी सारी निराशा, सारी हताशा उड़न-छू हो गयी। वे उल्टे पाँव घर लौट आये। उन्होंने महसूस किया कि वे भी मानो – बहता हुआ पानी हैं। जैसे बहता पानी छोटी-बड़ी, नीची-ऊँची, गन्दी-स्वच्छ वस्तुओं तथा परिवेशों के सम्पर्क में आकर भी उनमें आसक्त होकर ठहर नहीं जाता, वैसे ही मुझे भी केवल आगे-ही-आगे बढ़ते रहना है, बढ़ते रहना है।

वे दुगने उत्साह के साथ एकाग्र चित्त से एक बार फिर अपनी पढ़ाई में जुट गये। वे, न केवल इस बार की परीक्षा में प्रथम आये, बल्कि आगे की सभी परीक्षाओं में भी अपना प्रथम स्थान बरकरार रखा। इस दौरान उनसे जितना बना, जैसा भी बन सका, दूसरों की समुचित मदद करते रहे। उनकी सक्रियता और परोपकारी स्वभाव का परिणाम यह हुआ कि आगे चलकर उन्हें देश के प्रथम नागरिक – राष्ट्रपति होने का गौरव प्राप्त हुआ और इस पद का उन्होंने सफलतापूर्वक निर्वाह किया।

वस्तुत: आगे बढ़ना और निरन्तर बढ़ते रहना ही जीवन है। जो गतिशील रहता है, उसे काल के थपेड़े विचलित नहीं कर सकते। गतिशीलता कर्मठता का द्योतक है। जो व्यक्ति जीवन में आनेवाली बाधाओं को दूर करते हुए सतत प्रयत्नशील रहता है, सफलता उसी के चरण चूमती है।

१८५. मन के हारे हार है

बंगाल का अन्तिम नवाब सिराजुद्दौला बड़ा ही स्वाभिमानी था। वह अंग्रेजों से जूझते-जूझते हताश हो रहा था, तभी गुप्तचरों ने उसे सूचना दी कि सेनापति मीर जाफर अंग्रेजों से मिलकर उसके खिलाफ साजिश रच रहा है। इससे सिराजुद्दौला और भी पस्त हो गया। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि इस स्थिति में अंग्रेजों का कैसे मुकाबला किया जाये ! उसकी यह किं-कर्त्तव्य-विमूढ़ता उसकी माँ से देखी न गई। वह बेटे के पास आई, किन्तु सिराजुद्दौला को उसके आने की आहट भी न सुनाई दी। वह बोली, "बेटे, इतना पस्त तो मैंने तुम्हें कभी नहीं देखा, जितना आज देख रही हूँ।" "आप सही फरमा रही हैं, अम्मी जान" – सिराजुद्दौला ने कहा, "आज मैं खुद को बड़ा हताश महसूस कर रहा हूँ।" "बेटे, तुम्हारी इस हताशा की वजह मुझे मालूम है, लेकिन इस तरह हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहने से तुम्हारी समस्या हल नहीं होगी। मैं तुमसे एक सवाल करती हूँ। मान लो, तुम्हें कोई शख्स मुझ पर हमला करता दिखाई दे, तो तुम क्या करोगे?" सुनते ही सिराजुद्दौला ने उत्तेजित होकर म्यान से तलवार निकाल ली और कहा, "मैं उस दुष्ट की बोटी-बोटी काट डालूँगा।"

यह सुनकर माँ बोली, "मगर बेटे, आज तुम्हारी अम्मी पर नहीं, बल्कि मादरे-वतन (मातृभूमि) पर खतरे के बादल मँडरा रहे हैं। तुम्हें दुश्मन के साथ-साथ अपनों का भी सामना करना है। इस समय हिम्मत हारना कहाँ तक उचित है? बेटे, मादरे-वतन तुम्हारे अकेले का नहीं, यहाँ के हर शख्स का है। क्या वे भी तुम्हारी तरह मायूस होकर, हार मानकर दुश्मन की पनाह लेना स्वीकार करेंगे। दुश्मन के दाँत खट्टे करने के लिये तुम्हें बहादुरी दिखानी होगी। इससे फौजियों का हौसला बढ़ेगा। मेरी दुआ है कि इस जंग में तुझे जरूर कामयाबी मिलेगी।" माता के इन जोश भरे शब्दों ने सिराजुद्दौला के पस्त हृदय में नयी जान फूँक दी। उसका खोया हुआ उत्साह लौट आया। जीत के संकल्प के साथ उसने अंग्रेजों से डटकर लोहा लिया। ❑❑❑

विवेकानन्द जयन्ती समारोह, रायपुर (२०११)

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में 'विवेकानन्द जयन्ती' के उपलक्ष्य में छात्र-छात्राओं के व्यक्तित्व-विकास तथा चरित्र-निर्माण हेतु ४ जनवरी से १२ जनवरी तक आश्रम के सत्संग भवन में प्रतिदिन सायं ६ बजे विभिन्न प्रकार की प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया, जिसमें छात्र-छात्राओं ने उत्साह के साथ भाग लेकर अपने बहुमूल्य विचारों की प्रस्तुति करके अपने उदीयमान व्यक्तित्व का परिचय दिया। प्रस्तुत है उसी का सुविस्तृत विवरण –

स्वामी विवेकानन्द का राष्ट्र-चिन्तन – विषय था ४ जनवरी, मंगलवार को आयोजित 'अन्तर्महाविद्यालयीन विवेकानन्द भाषण प्रतियोगिता' का। प्रथम पुरस्कार विजेता जी.ई.सी. इंजि. कॉलेज के छात्र **अनिकेत झा** ने कहा, ''स्वामीजी अपने बचपन से ही राष्ट्र का चिन्तन कर रहे थे। बालक नरेन्द्र का यह चिन्तन ही बाद में स्वामी विवेकानन्द का राष्ट्र-चिन्तन बना। राष्ट्र की समस्याओं के समाधान हेतु उन्होंने युवाशक्ति को महत्त्व दिया और उनके संगठन हेतु रामकृष्ण मिशन की स्थापना की। उन्होंने वसुधैव कुटुम्बकम्, सर्वधर्म-समभाव, राष्ट्रीय एकता और मानव-सेवा के आदर्श की स्थापना की।'' द्वितीय पुरस्कार विजेता **चक्रपाणि मिश्र** ने कहा, ''किसी भी समाज के विकास के लिये तीन चीजों की जरूरत है – भूमि, शिक्षा और संस्कृति। यदि किसी भी राष्ट्र के वासी अपनी भूमि से प्यार करते हैं, तो वह राष्ट्र अधिक समृद्ध होगा। भगवान राम ने लक्ष्मण से कहा था – **अपि स्वर्णमयी लंका न मे लक्ष्मण रोचते। जननी-जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी**॥ – हे लक्ष्मण, मुझे सोने की लंका अच्छी नहीं लगती, क्योंकि जननी व जन्मभूमि स्वर्ग से बढ़कर है। स्वामीजी ने हर भारतवासी को राष्ट्रभूमि से प्रेम करने का सन्देश दिया, सबके लिये शिक्षा पर बल दिया। उन्होंने धर्म एवं संस्कृति की गरिमा से सबको परिचित कराया तथा देशवासियों में स्वाभिमान जागृत किया।'' **उत्कर्ष चतुर्वेदी** ने कहा, ''शिखर पर पहुँचना आसान है, पर शिखर पर बने रहना कठिन है; इसीलिये स्वामीजी ने **उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत** का सन्देश दिया।'' **निहारिका अग्रवाल** ने कहा, ''स्वामी विवेकानन्द जी ने अपने राष्ट्र-चिन्तन में कहा कि जनता की उपेक्षा हमारा सबसे बड़ा राष्ट्रीय पाप है। जैसे आत्मा के बिना देह नष्ट हो जाती है, पानी के बिना पेड़ सूख जाता है, वैसे ही स्वामी विवेकानन्द और उनके विचारों के बिना हमारा राष्ट्र अधूरा है, प्राणहीन है।'' **सागर पिम्पलापुरे** ने कहा, ''मनुष्य के जीवन में संघर्ष की प्रधानता होनी चाहिये। स्वामीजी की दृष्टि में देश का तभी विकास होगा, जब नारी-सम्मान, नारी-शिक्षा, जीवन में शुद्धता पर बल दिया जायेगा।''

इस सत्र की अध्यक्षता करते हुये दूधाधारी बजरंग महाविद्यालय के प्राचार्य **श्री अरविन्द गिरोलकर** ने कहा, ''हमारा लक्ष्य क्या है और हम कैसे उस पर अग्रसर हों – यह सब कुछ राष्ट्र-चिन्तक स्वामी विवेकानन्द के मन में था। आज गलती युवा-पीढ़ी की नहीं है, बल्कि हर उस पीढ़ी की है, जिन्होंने युवाओं को सही दिशा नहीं दिया। हमारी सुविधाओं की ओर तो ध्यान दिया, पर जीवन-मूल्यों की ओर ध्यान नहीं दिया। जब हम भाषणों से निकलकर वास्तविक जीवन में आयेंगे, तब देश में शान्ति आ जायेगी। यदि हम जीवन-मूल्यों को धारण करते हुये आगे बढ़ेंगे, तो इससे पूरी मानवता का कल्याण होगा।''

'अन्तर्महाविद्यालयीन तात्कालिक भाषण प्रतियोगिता' का आयोजन था ५ जनवरी, बुधवार को। प्रथम पुरस्कार विजेता **श्री उत्कर्ष चतुर्वेदी** का विषय था – **ग्रामीण भारत में स्वास्थ्य सेवा**। उन्होंने विषय का प्रतिपादन करते हुये कहा, ''आज भी ग्रामीण अस्पतालों में शहरों जैसी सुविधायें उपलब्ध नहीं हैं। यदि हम शहर की तुलना में गाँवों पर भी थोड़ा-सा ध्यान दें, तो इससे बहुत लोगों का कल्याण होगा। गाँवों में बैगा, झाड़-फूँक आदि का अन्धविश्वास इसलिये बढ़ा है कि हम आज तक अच्छी चिकित्सा की सुविधा वहाँ नहीं दे सके।'' द्वितीय पुरस्कार विजेता **श्री पार्थ झा** का विषय था – **ऊर्जा का वैकल्पिक उपाय**। उन्होंने कहा, ''अमेरिका अधिकांशत: अपने वैकल्पिक ऊर्जा पर ही निर्भर है। अत: भारत में भी वैकल्पिक ऊर्जा के स्वरूप पर विचार होना चाहिये।'' **अनिकेत झा** ने **'शहरी और ग्रामीण शिक्षा'** विषय पर कहा, ''बोर्ड एक होते हुये भी ग्रामीण बच्चों की पढ़ाई ठीक नहीं हो पाती, क्योंकि उन्हें शहर जैसी सुविधायें प्राप्त नहीं हैं। शहरी बच्चों के मनोरंजन के साधन बहुत हैं, लेकिन ग्रामीण बच्चों को नहीं मिलते हैं। वे लगातार पढ़ते ही रहते हैं। गाँवों में आज भी गुरु-शिष्य परम्परा बनी हुयी है।'' **पियूष प्रखर** ने **'संयुक्त परिवार की आवश्यकता'** पर कहा, ''अँग्रेजी की कहावत है 'ओल्ड इज गोल्ड'। आज का आधुनिक युग पुराने युग की ओर जाना चाहता है। संयुक्त परिवार हमें मुश्किलों का सामना करना, बड़ों का आदर करना और मिलजुलकर रहना सिखाता है। हमें एक-दूसरे से प्रेम करना सिखाता है। यदि संयुक्त परिवार नहीं रहा तो, देश की संस्कृति, सभ्यता, छोटे-बड़े का प्रेम और सम्मान नहीं सीख पायेंगे तथा दादा-दादी की कहानियाँ क्या होती हैं, हम नहीं जान पायेंगे।'' इस सत्र की अध्यक्षता रविशंकर विश्वविद्यालय के फार्मेसी विभाग के अध्यक्ष **प्रो. शैलेन्द्र सर्राफ जी** ने की थी।

६ जनवरी, बृहस्पतिवार को 'अन्तर्महाविद्यालयीन वाद-विवाद प्रतियोगिता' का आयोजन था। विषय था – **इस सदन की राय में देशव्यापी भ्रष्टाचार का निवारण कानून की अपेक्षा चारित्रिक विकास**

के द्वारा ही संभव है । इस प्रतियोगिता में दो प्रथम पुरस्कार विजेता घोषित हुये थे । प्रथम पुरस्कार विजेता **पियूष प्रखर** ने विषय के पक्ष में कहा, ''तत्काल में बिहार के चुनाव में अपनी नैतिकता के कारण ही नीतिश कुमार की सरकार बहुमत से विजयी हुई है । दूसरी प्रथम पुरस्कार विजेता **मीनल बंछोर** ने विषय के विपक्ष में कहा, ''बड़े दुख की बात है कि स्वामी विवेकानन्द जैसे चारित्रिक मूल्य के आदर्श के रहते हुये भी हमारा देश भ्रष्टाचार में डूबा हुआ है । हमारे संविधान में कुछ खामियाँ हैं । भ्रष्टाचारी गीली मिट्टी से नहीं बने हुये हैं कि इन्हें मोड़ दिया जाय, इन्हें नैतिकता समझायी जाय । ये चट्टान जैसे हैं । इन्हें कड़े-से-कड़े कानून बनाकर इन पर मुकदमा चलाकर और कठोर दण्ड का प्रावधान किया जाय, तभी भ्रष्टाचार मिट सकता है ।'' **अनिकेत झा** ने द्वितीय पुरस्कार प्राप्त किया । **उत्कर्ष चतुर्वेदी** ने विषय के पक्ष में कहा, ''कानून के डंडे से नैतिकता नहीं सिखायी जा सकती । यदि एक माँ अपने बेटे से कहे कि बेटा यदि तुम अपने पिताजी को प्रणाम नहीं करोगे, तो तुम्हें पुलिस पकड़ लेगी, तो कैसा लगेगा?'' **राहुल तिवारी** ने कहा, ''मैं कानून का छात्र होने के नाते कहता हूँ कि कानून की लचर व्यवस्था के कारण ही बहुत से भ्रष्टाचारी बच जाते हैं । अत: केवल कानून से भ्रष्टाचार निवारण नहीं हो सकता ।''

इस सत्र की अध्यक्षता रविशंकर विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्र विभागाध्यक्ष **श्री जे.एल. भरद्वाज** ने की । उन्होंने कहा, ''यदि हम देश को विकसित देखना चाहते हैं; तो चारित्रिक, नैतिक, आध्यात्मिक विकास आवश्यक है, इसी से सुख-शान्ति आ सकती है । बुद्ध और ईसा ने भी मानव के चारित्रिक विकास पर बल दिया है ।''

७ जनवरी, शुक्रवार को हुई 'अन्तर्विद्यालयीन वाद-विवाद प्रतियोगिता' का विषय था – **इस सदन की राय में देश का सर्वांगीण विकास हिंसात्मक उपायों की अपेक्षा विकास कार्यों के द्वारा ही संभव है** । प्रथम पुरस्कार विजेत्री **मेघा चौबे** ने पक्ष में कहा, ''हिंसा के उपयोग से मनुष्य, सदाचार और संस्कृति नष्ट हो जायेंगे, अत: हिंसा के द्वारा कभी विकास नहीं हो सकता ।'' द्वितीय पुरस्कार विजेत्री **आनंदिता शर्मा** ने कहा, ''हिंसा से अस्थायी विकास संभव हो सकता है, लेकिन स्थायी विकास नहीं हो पाता । प्राकृतिक संपदापूर्ण गोवा शान्ति से विकास कर रहा है, किन्तु प्राकृतिक संपदा-सम्पन्न होने पर भी कश्मीर और छत्तीसगढ़ का बस्तर आज भी आतंकवाद और नक्सली हमलों से विनाश की ओर जा रहा है, जो कि देश के लिये घोर कलंक है । हिंसात्मक होने के कारण ही किसी को आजीवन कारावास की सजा दी जाती है और सेवा कार्यों के लिये ही रामकृष्ण मिशन, नारायणपुर को पुरस्कार दिया गया ।'' **घनश्याम साहू** ने कहा, ''जब भी हमारे देश की स्थिति थोड़ी सुदृढ़ होती है, तभी आतंकवादी कहीं बम विस्फोट करते हैं, तो कहीं नक्सली हिंसायें होती हैं । इन्हें कठोर सजा दिये जायँ, तभी देश का विकास संभव है ।'' **रिमझिम सोनी** ने पक्ष में कहा, ''हिंसा और विकास का आपस में कोई मेल नहीं है, जैसे धरती और आकाश का । समाजवाद के नाम पर राजनीति से जूझता महाराष्ट्र, आतंकवाद के नाम पर कश्मीर और नक्सल से बस्तर विनाश के कगार पर खड़ा है ।'' इस सत्र की अध्यक्षता शासकीय स्नात्कोत्तर महाविद्यालय, धमतरी के प्राचार्य **डॉ. के. एन. बापट** ने की ।

८ जनवरी, शनिवार को 'अन्तर्विद्यालयीन तात्कालिक भाषण प्रतियोगिता' थी । प्रथम पुरस्कार विजेत्री राजकुमार कॉलेज की **मेघा चौबे** ने 'देशद्रोही का निपटारा कैसे हो' विषय पर अपने विचार प्रकट किया । द्वितीय पुरस्कार विजेता केन्द्रिय विद्यालय के **सुशान्त झा** ने 'मेरी पाठशाला कैसी हो' पर कहा कि आदर्श पाठशाला में अच्छी पढ़ाई तथा खेल के साथ ही चारित्रिक विकास की भी व्यवस्था होनी चाहिये । शिक्षक अच्छे हों और विद्यार्थी में वे पाँचों गुण होने चाहिये – **काक-चेष्टा बकोध्यानं श्वाननिद्रा तथैव च । अल्पहारी गृहत्यागी विद्यार्थी पंचलक्षणम्** ।। इस सत्र की अध्यक्षता **श्री चित्तरंजन कर** ने की थी । उन्होंने सदन संबोधित करते हुये कहा कि आज के छात्र रटकर परीक्षा अंक प्राप्त करना चाहते हैं । प्रतियोगिता में भी वैसे ही करते हैं । लेकिन इससे आपका विकास नहीं होगा । आपको जितना आता है, उतना ही सरल भाव से धाराप्रवाह बोलिये । प्रारम्भ से ही विवेकानन्द आश्रम प्रतियोगिता के साथ-साथ छात्रों की ऊर्जा और प्रतिभा को जागृत करने का प्रयास करता रहा है । भारतेन्दु हरिश्चन्द आठ भाषाओं के जानकार होकर भी कहते थे – **'निज भाषा उन्नति अहै'** । आपमें भाषा के प्रवाह की कमी है । आप भाषा को चिपटाइये नहीं, उसे चेतना का अंग बनाइये । केवल रटकर परीक्षा उत्तीर्ण मत होइये, उसे आत्मसात् कीजिये । रामकृष्ण, गौतम, गाँधी, बुद्ध, विवेकानन्द जी – सबने साधना के द्वारा ही जीवन में लक्ष्य-प्राप्ति की थी ।''

९ जनवरी, रविवार को 'अन्तर्विद्यालयीन विवेकानन्द भाषण प्रतियोगिता' थी । विषय था – **युवकों के पथ-प्रदर्शक स्वामी विवेकानन्द** । प्रथम पुरस्कार केन्द्रीय विद्यालय के छात्र **सुशान्त झा** ने प्राप्त किया । द्वितीय पुरस्कार विजेत्री होलीक्रास हायर सेकेन्ड्री स्कूल, पेंशनबाड़ा की छात्रा **आनन्दिता शर्मा** ने कहा कि ''हिमालय की ऊँचाई कोई माप नहीं सकता । समुद्र की गहराई कोई नाप नहीं सकता । ऐसे ही व्यक्तित्व से सम्पन्न थे हमारे आदर्श स्वामी विवेकानन्द । स्वामीजी मनुष्य मात्र को सच्चे व्यक्तित्व का धनी बनाना चाहते थे । वे शारीरिक, मानसिक और चारित्रिक विकास करने वाली शिक्षा पर जोर देते थे । उन्होंने दरिद्र-देवो-भव और नर-नारायण-सेवा का संदेश दिया ।''

इस सत्र की अध्यक्षता करते हुये स्नातकोत्तर महाविद्यालय, तिल्दा के प्राचार्य श्री एस. के. चटर्जी ने कहा, ''आज हमें ऐसे युग प्रवर्तक की जरूरत है, जो समाज को सही शिक्षा देकर पथ-प्रदर्शन कर सके । हमारी अभिलाषा है कि स्वामी विवेकानन्द जी फिर से अवतरित हों और हमारा मार्ग दर्शन करें ।''

१० जनवरी, सोमवार को 'अन्तर्माध्यमिक शाला विवेकानन्द भाषण प्रतियोगिता' थी । प्रतियोगिता का विषय था – **मेरे आदर्श पुरुष स्वामी विवेकानन्द** । इस प्रतियोगिता में मानवेन्द्र नाथ ठाकुर ने बड़ा ही ओजस्वी व्याख्यान देकर प्रथम पुरस्कार प्राप्त किया । द्वितीय पुरस्कार विजेता थे विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा के अजय कोठारी । उन्होंने स्वामीजी के प्रति अपनी श्रद्धा अर्पित करते हुये कहा –

उदासीन युवकों को दिया जिसने अग्निवचन ।
उस आदर्श-पुरुष स्वामी विवेकानन्द को

हमारा शत-शत नमन्, शत-शत नमन् ।।

नागेन्द्र कुमार पटेल ने कहा कि स्वामी विवेकानन्द मेरे-आपके तथा राष्ट्र के आदर्श-पुरुष ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण विश्व के आदर्श-पुरुष हैं । इस सत्र की अध्यक्षता **श्री मुकुन्द माधवराव हम्बर्डे** ने की ।

११ जनवरी, मंगलवार को आयोजित 'अन्तर्माध्यमिक शाला वाद-विवाद प्रतियोगिता का विषय था – **इस सदन की राय में जीवन में सुखी होने के लिये स्वार्थ की अपेक्षा परोपकार अधिक आवश्यक है ।** प्रथम पुरस्कार विजेता **संदीव पाटले** ने विपक्ष में कहा कि अपने सुख की कामना एवं दूसरों का सुख परोपकार का हिस्सा है । मैं दावे के साथ कह सकता हूँ, वही परोपकारी व्यक्ति जीवन में सुखी होगा, जिसका जीवन में कहीं-न-कहीं स्वार्थ होगा । द्वितीय पुरस्कार विजेता **खिलेश त्रिवेन्द्र** ने पक्ष में कहा, ''जीवन में सुखी होने के लिये स्वार्थ की अपेक्षा परोपकार अधिक जरूरी है । क्योंकि –

परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः परोपकाराय बहन्ति नद्यः ।
परोपकाराय दुहन्ति गावः परोपकाराय सतां विभूतयः।।

अर्थात् – परोपकार के लिए वृक्ष फल देते हैं, परोपकार के लिए नदियाँ बहती हैं । परोपकार के लिए गायें दूध देती हैं और सज्जनों की विभूति परोपकार के लिए होती हैं । जी हाँ, जीवन में सुखी होने के लिए परोपकारी होना अधिक आवश्यक है । भगवान शंकर ने देवताओं की आर्त पुकार सुनकर द्रवित होकर हलाहल विष पीकर देवताओं की रक्षा की । महर्षि दधीचि ने अपने शरीर को परोपकार के लिए इसलिए दे दिया क्योंकि उनके शरीर से बने शस्त्र से वृत्रासुर का वध हुआ और देवताओं की रक्षा हुई महाराज शिबि ने कबूतर के लिये अपने सम्पूर्ण शरीर को काट-काटकर तराजू पर तौला । इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि जो दूसरों पर अपनी जान न्योछावर करता है वही सुखी होता है । सुखी होने के लिये ही वह परोपकार करता है । इसलिये जीवन में सुखी होने के लिये स्वार्थ की अपेक्षा परोपकार अधिक आवश्यक है । कविवर रहीम ने कहा है – **रहिमन यो सुख होत है उपकारी के अंग । बाटन बारैं को लगें ज्यों मेंहदी के रंग ।।** अर्थात् जैसे मेंहदी वांटने वाले के अंगों पर मेंहदी का रंग अनचाहे लग जाता है, वैसे ही उपकार करते समय उपकार-कर्ता को भी सुख-प्राप्ति होती है । । परोपकार का मूल भाव है – **बहुजन हिताय बहुचन सुखाय** । अत: मैं मानता हूँ कि जीवन में सुखी होने के लिये स्वार्थ की अपेक्षा परोपकार अधिक आवश्यक है । गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी कहा है – **परहित बस जिनके मन माही । तिनकहुँ जग कुछ दुर्लभ नाहीं ।।** अर्थात् जिनके मन में दूसरों का उपकार रहता है, उनके लिये जग में कुछ भी दुर्लभ नहीं है । इसलिये मैं यही कहता हूँ कि सुख भौतिक संसाधनों के संग्रह में नहीं, अपितु उसके सदुपयोग में है । परोपकार करने से आत्मिक सुख की अनुभूति होती है । **तरुवर फल नहिं खात है सरवर पियहिं न पान । कहि रहीम परकाज हित संपत्ति संचै सुजान ।।** कविवर रहीम कहते हैं – वृक्ष स्वयं अपने फलों को नहीं खाते । तालाब स्वयं अपने जल का पान नहीं करते । वैसे ही सज्जन व्यक्ति भी दूसरों के हित के लिये संपत्ति एकत्र करते हैं । परोपकार से जीवन सुखी होता है, न कि स्वार्थ से । जिन सज्जनों के हृदय में परोपकार निवास करता है, उनकी विपत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं और पग-पग पर संपत्तियाँ आती हैं और संपत्तियों से सुख की प्राप्ति होती है । **नरेन्द्र जांघड़े** ने पक्ष में कहा, ''परोपकार वही कर सकता है, जो अपना आत्मिक बलिदान दे सकता है । परोपकार से ही जीवन का स्तर ऊँचा उठता है । जीवन में सुखी होने के लिये स्वार्थ की अपेक्षा परोपकार अधिक आवश्यक है ।'' **मृणांक चौबे** ने पक्ष में कहा कि ''परोपकारी व्यक्ति कभी स्वार्थी नहीं होता । वह दूसरों के हित के लिये जीवन जीता है । परोपकार ही सुखी जीवन का मूलमन्त्र है । स्वार्थ मनुष्य को पशु बनाता है ।'' सत्र की अध्यक्षता करते हुये रविशंकर विश्वविद्यालय के रसायनशास्त्र की विभागाध्यक्ष **डॉ. रमा पाण्डेय** ने कहा, ''स्वामी विवेकानन्द आजीवन परोपकार करते रहे । पहले के लोग परोपकार करते थे । आज सारी सुविधा रहते रहते हुये भी किसी को दूसरे के लिये समय नहीं है । भाषण केवल देने के लिये नहीं, अपितु आत्मसात् करने के लिये होते हैं ।''

१२ जनवरी, बुधवार को होनेवाली अन्तर्प्राथमिक पाठ-आवृत्ति प्रतियोगिता में केवल प्राथमिक विद्यालय के छात्र ही भाग लेते हैं । हर प्रतिभागी को ३ मिनट तक विवेकानन्द-साहित्य के कुछ अंश मौखिक सुनाने होते हैं । प्रथम पुरस्कार विजेत्री **समृद्धि शर्मा** ने अग्निमंत्र का पाठ किया तथा द्वितीय पुरस्कार विजेता **हर्ष कुमार** ने देशभक्ति का आदर्श सुनाया । **प्रथम देवांगन** और **सुष्मिता ताम्रकार** ने आवृत्ति की स्वामीजी की प्रसिद्ध वाणी – विश्वास ! विश्वास! विश्वास! स्वयं पर विश्वास! परमात्मा पर विश्वास! यही सफलता का रहस्य है । सबसे छोटी **तनीशा देवांगन** ने गायत्री, महामृत्युंजय आदि मंत्र और स्वामीजी की वाणी का पाठ किया **तन्मय लाम्बड** ने निर्भीकतापूर्वक अपना परिचय दिया । **सिद्धि तिवारी** ने कहा, ''मुझमें डर कहाँ, स्वयं ही अपना उद्धार करो ।'' **ऋषिका कन्दोई** ने कहा 'शक्ति ही पूजा और दुर्बलता ही मृत्यु है' और **अनिरुद्ध वाजपेयी** ने कहा, ''केवल पानी-पानी करने से प्यास नहीं जाती, केवल भोजन-भोजन करने से भूख नहीं मिटती । वैसे ही केवल ईश्वर-ईश्वर कहकर चिल्लाने से कुछ नहीं होगा, उनकी अनुभूति करनी होगी ।'' **प्रिया तिवारी** ने कहा, ''हे कृपामयी ज्योति, हमें मार्ग दिखाओ ।'' सभी प्रतिभागियों को 'बच्चों के विवेकानन्द' पुस्तक, चॉकलेट तथा अल्पाहार प्रदान किया गया ।

इस सत्र की अध्यक्षता शासकीय नवीन कन्या महाविद्यालय, रायपुर की प्राचार्या **श्रीमती अरुणा पालटा** ने किया । अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने कहा, ''बहुत छोटे-छोटे बच्चे आकर बहुत बड़ी बातें कह रहे थे । यह बहुत अच्छा है, लेकिन मेरे प्यारे बच्चो ! ये केवल बोलने के लिये नहीं है । इसे जीवन में लाना है । जो बातें बोलने में सरल लगती हैं, उन्हें जीवन में लाना कठिन होता है । अत: हमें जीवन में लाने की चेष्टा करनी है । बच्चो, जीवन में **तीन बातों पर ध्यान दें । पहला – समय के महत्व को समझें ।** अपना समय बर्बाद न करें । **दूसरा – अनुशासन ।** जीवन में अनुशासन का महत्त्व है । यदि आप जीवन में अनुशासन को उतारेंगे, तो जीवन में सफल होंगे । अनुशासित डोर के कारण ही पतंग तेज हवा में भी आकाश में लहराती रहती है । यदि एक फौजी के हाथों में बन्दूक देंगे, तो उससे वह आपकी रक्षा करेगा । लेकिन यदि एक अप्रशिक्षित व्यक्ति को देंगे, तो वह विनाश कर देगा ।

गुलाब का फूल काँटों में मुस्कुराता हुआ दिखाई देता है । वह सबको अपनी ओर आकर्षित कर लेता है । प्यारे बच्चो, जीवन में कभी निराश न होना, हमेशा गुलाब की तरह खिलखिलाते रहना । मैं तुम्हें एक बहुत प्यारी-सी कविता सुनाकर अपनी वाणी को विराम देती हूँ –

पढ़ते जाओ पढ़ते जाओ, सबसे आगे बढ़ते जाओ ।
कभी किसी से डरो नहीं, सिर को नीचा करो नहीं ।
इरादे ऊँचे करते जाओ, पढ़ते जाओ, बढ़ते जाओ ।।

१२ जनवरी, बुधवार को प्रात: ९ बजे रविशंकर विश्वविद्यालय और रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम के संयुक्त तत्त्वावधान में 'राष्ट्रीय युवा-दिवस' मनाया गया । विश्वविद्यालय परिसर में स्थित स्वामी विवेकानन्द जी की मूर्ति की पूजा एवं आरती की गयी । आश्रम के सचिव स्वामी सत्यरूपानन्द जी और विश्वविद्यालय के अन्य प्राध्यापकों-अधिकारियों ने स्वामीजी को पुष्पांजलि अर्पित की । कार्यक्रम का श्रीगणेश विवेकानन्द विद्यापीठ के छात्रों द्वारा वैदिक-पाठ एवं प्रारंभिक भजन 'सुनी हूँ मैं तव नाम, विवेकानन्द धाम' से हुआ । अतिथियों का पुष्पहार से स्वागत किया गया ।

तत्पश्चात् रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम द्वारा संचालित भाषण प्रतियोगिताओं में प्रथम पुरस्कार प्राप्त छात्रों के तेजस्वी व्याख्यान हुये । फिर कार्यक्रम के विशिष्ट अतिथि **श्री अंजनी शुक्ला**, अपर संचालक, उच्च शिक्षा विभाग, छत्तीसगढ़ शासन ने कहा, "स्वामी विवेकानन्द कहते थे, 'स्वयं को जानो ।' बच्चो, इस देश को आपकी जरूरत है । आज समाज में नैतिकता का ह्रास हो रहा है । आपको नैतिक बनना है । आज आप एक अच्छा कार्य करने का संकल्प लें । सत्य पर अडिग रहें । आपके अन्दर कोई-न-कोई एक विशिष्ट गुण है, उसे आप जानें और लक्ष्य की प्राप्ति हेतु अपने आपको पूर्ण समर्पित कर दें ।" विश्वविद्यालय के क्षेत्रीय अध्ययनशाला के विभागाध्यक्ष और विवेकानन्द विद्यापीठ के सचिव **श्री ओमप्रकाश जी वर्मा** ने कहा, "स्वामी विवेकानन्द जी सर्वांगीण व्यक्तित्व के धनी थे । उनका जीवन स्फटिक मणि की भाँति है । हम जिस भी कोण से देखें, वह प्रकाशित ही दिखाई देता है । वे संगीतज्ञ, चिन्तक, राष्ट्रप्रेमी, सत्यवादी और निर्भय थे । उनका सारा जीवन सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् की समन्वित अभिव्यक्ति है । उनका संदेश आज भी हमें प्रभावित करता है ।" विश्वविद्यालय के कुलसचिव **श्री कृष्ण कुमार चन्द्राकर** ने कहा, "आज समय आ गया है कि विवेकानन्द का अनुसरण करते हुये आगे बढ़ें और स्वस्थ भारत, स्वस्थ समाज का निर्माण करें ।" रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम के सचिव **स्वामी सत्यरूपानन्द जी** ने बच्चों को कहानी सुनाकर स्वामी विवेकानन्द जी के जीवन-आदर्श को सामने रखते हुये कहा, "प्रकृति के विरुद्ध संघर्ष ही मनुष्य के भीतर की चेतना का लक्षण है । मनुष्य बाहर और भीतर की प्रकृति को जीतकर महान बनता है ।" **श्री समरेन्द्र सिंहजी** ने भी छात्र-छात्राओं को जीवन-निर्माण सम्बन्धी अपने विचार प्रदान किये । अन्त में विवेकानन्द विद्यापीठ के बच्चों द्वारा 'वन्दे मातरम्' गीत से सभा सम्पन्न हुई । सभा का संचालन **डॉ. प्रीतिलाल जी** ने किया । बाद में सबको विवेकानन्द आश्रम, रायपुर की ओर से 'सबके स्वामीजी' नामक पुस्तक और स्वादिष्ट अल्पाहार वितरित किये गये ।

१३ जनवरी, बुधवार को आश्रम द्वारा संचालित 'विवेकानन्द बालक संघ' ने शाम ७ बजे से १० बजे तक सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किया, जिसमें छोटे-छोटे बच्चों ने विवेकानन्द सरोवर पर एक नाटक प्रस्तुत किया, जिससे लोगों को स्वच्छ और अनुशासित जीवन जीने की प्रेरणा मिलती है । बच्चों ने कई गीत-नृत्य प्रस्तुत किये । अन्त में 'रामकृष्ण शरणम्' भजन से कार्यक्रम सम्पन्न हुआ । कार्यक्रम का निर्देशन 'बालक संघ' के संचालक **ब्रह्मचारी नन्दकुमार जी** ने किया ।

१४ जनवरी को अपराह्न ३ बजे 'विवेकानन्द जयन्ती समारोह का उद्घाटन एवं पुरस्कार वितरण छत्तीसगढ़ राज्य के महामहिम राज्यपाल श्री शेखर दत्त जी ने किया । सर्वप्रथम महामहिम ने आकर आश्रम-परिसर का परिभ्रमण तथा विभिन्न विभागों का अवलोकन किया । कार्यक्रम का शुभारम्भ राजभवन की पार्टी द्वारा राष्ट्रगीत 'जन-गण-मन' के बैंड-वादन तथा समागत अतिथियों के दीप-प्रज्वलन एवं आश्रम के संन्यासी-ब्रह्मचारियों के शान्ति-पाठ से हुआ । उसके बाद आश्रम-छात्रावास के बच्चों ने 'मनुष्य तू बड़ा महान है' गीत प्रस्तुत किया । तत्पश्चात् आश्रम-प्रमुख **स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज** ने मुख्य अतिथियों का स्वागत, उनका परिचय एवं आश्रम की गतिविधियों का प्रतिवेदन प्रस्तुत किया ।

सभा की अध्यक्षता करते हुये रामकृष्ण मिशन, नारायणपुर के सचिव **स्वामी व्याप्तानन्द जी** ने कहा, "प्यारे बच्चो ! हमें स्वामी विवेकानन्द जी की बातें अच्छी लगती हैं, किन्तु हम उन्हें किताबों और व्याख्यानों तक ही सीमित कर लेते हैं । हम स्वामीजी के किसी एक भाव को अपने जीवन में लाने का प्रयास करें । आज देश की हालत देखकर रुलाई आ जाती है । आज देश को आपकी आवश्यकता है । भारत का मेरुदण्ड त्याग और वैराग्य है । आज हम सबको देश की रक्षा के लिये चिन्तन करने की आवश्यकता है ।" तदुपरान्त **महामहिम राज्यपाल श्री शेखर दत्त जी** ने उद्बोधन में कहा –

महामहिम राज्यपाल श्री शेखर दत्त का अभिभाषण

"रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर द्वारा आयोजित स्वामी विवेकानन्द जी के 'जयन्ती महोत्सव' में शामिल होते हुए मुझे बहुत खुशी हो रही है । इसके लिए मैं आश्रम के सभी पदाधिकारियों को बधाई एवं शुभकामनाएँ देता हूँ । स्वामी विवेकानन्द जी ने केवल हमारे देश की युवाओं को ही नहीं, बल्कि पूरे विश्व को एक नई दिशा दिखायी थी और मैं उम्मीद करता हूँ कि हमारा युवा वर्ग स्वामी विवेकानन्द जी के दिखाये रास्ते पर चलने का हर संभव प्रयास करेगा ।

"स्वामी विवेकानन्द के संदेशों ने पराधीन भारत में, सोये भारत में नवजागरण का संचार किया । उनके संदेशों से प्रेरित होकर अनेक युवकों ने पराधीनता की बेड़ियों को काटने के लिए स्वयं को राष्ट्र की सेवा के लिए समर्पित कर दिया । उन्होंने मानव-सेवा को ईश्वर-प्राप्ति का रास्ता बताया और आध्यात्मिक शक्ति का उपयोग मानव की सेवा के लिए किया । उन्होंने गीता के 'कर्मयोग' के दर्शन को ऐसे रूप में सामने रखा, जिसे जनता समझ सके ।

"स्वामीजी ने भारतीय सभ्यता के 'सर्व-धर्म-समभाव' की विशेषता को पश्चिम के सामने रखा । शिकागो धर्म-सम्मेलन में अपने ख्यातिप्राप्त भाषण में उन्होंने कहा था, 'हम न केवल विश्वव्यापी सहिष्णुता में विश्वास रखते हैं, बल्कि सभी धर्मों को सत्य मानते हैं ।' उन्होंने यहाँ भारतीय संस्कृति के सार को रेखांकित किया और पूरी दुनिया के सामने भारतीय आध्यात्म को सशक्त रूप से प्रस्तुत किया । स्वामीजी के शिकागो भाषण का लोगों पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा, क्योंकि पहली बार पश्चिमी जगत के उन लोगों के सामने भारतीय विचारधारा संक्षिप्त और सारगर्भित किन्तु स्पष्ट रूप से खुलकर सामने आई, जो भारत के बारे में बहुत कम जानते थे और इसे कोई महत्त्व नहीं देते थे । स्वामीजी की आयु तब मात्र तीस वर्ष थी । लेकिन उनका जीवन आने वाली भारतीय पीढ़ियों के लिए प्रेरणा का स्रोत बन गया ।

"स्वामी विवेकानन्द जी युगपुरुष थे, जिन्होंने भारत ही नही, वरन् विश्व समुदाय को रास्ता दिखाया, मानव सेवा को सबसे बड़ा धर्म बताया और इसे अपना परम कर्तव्य मानने के लिये विश्व समुदाय को प्रेरित किया । स्वामी विवेकानन्द के विराट् व्यक्तित्व को केवल राष्ट्र की सीमा में नहीं बाँधा जा सकता । वे विश्वमानव थे । एक ओर उन्होंने राष्ट्रीय चेतना के लिए सतत परिश्रम किया, वहीं दूसरी ओर उन्होंने विश्व रंगमंच पर मनुष्य की दिव्यता का आख्यान किया ।

"स्वामी विवेकानन्द ने समाज को जो कुछ भी दिया, वह शताब्दियों तक मानवता की धरोहर बनी रहेगी । एक बार स्वामीजी के विचारों की प्रासंगिकता पर प्रकाश डालते हुए देश के पहले प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने कहा था – 'यदि आप स्वामी विवेकानन्द की रचनाओं तथा व्याख्यानों को पढ़ें, तो आप उनमें एक बड़ी विचित्र बात पायेंगे और वह यह कि वे कभी पुराने नहीं लगते । वे आज भी तरो-ताजा लगते हैं । इसका कारण यह है कि उन्होंने जो कुछ भी लिखा या कहा वह हमारी या विश्व की समस्याओं के मूलभूत पहलुओं से सम्बन्धित है ।' दलित, गरीब और शोषित वर्ग के लोगों के प्रति स्वामीजी के मन में गहरी सहानुभूति थी । उनका कहना था कि आप बिना किसी अप्रत्यक्ष इरादे से भी मानवता की सेवा कर सकते है । उनके सर्वधर्म में सम्पूर्ण मानव प्रजाति शामिल थी । स्वामीजी की प्रेरणा ने हमारे युवाओं को संकट के समय मदद के लिए उत्साहित किया है, चाहे समय अकाल का हो या युद्ध या प्राकृतिक आपदा का हो । सेवा की यही भावना रामकृष्ण मिशन जैसे संगठनों को विश्व के हर कोने में, आपदा के समय ले गयी है ।

मुझे इस बात को कहते हुए बहुत गर्व होता है कि छत्तीसगढ़ में रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम द्वारा अनेक सराहनीय कार्य किए जा रहे हैं । आज मुझे यहाँ पुस्तकालय, पॉली-क्लिनिक और मंदिर का अवलोकन करने का अवसर मिला है । निश्चय ही यहाँ आकर एक शान्ति और पवित्रता का अहसास होता है । मैं आपकी संस्था के उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ ।

आज जिन विद्यार्थियों को पुरस्कृत किया जा रहा है । उन्हें मैं हार्दिक बधाई एवं शुभकामनायें देता हूँ । मैं छात्र-छात्राओं से कहना चाहूँगा कि जीवन में हमेशा सकारात्मक विचारधारा अपनायें । कोई भी दुख मनुष्य के साहस से बड़ा नहीं, वही हारा जो लड़ा नहीं । हर परिस्थिति का साहस के साथ सामना करना चाहिए । युवाओं को उचित दिशा व मार्गदर्शन मिले, तो वे देश और समाज में क्रांतिकारी बदलाव ला सकते हैं । अन्त में आप सभी को पुन: बधाई एवं शुभकामनाएं ।"

महामहिम ने एक घटना का उल्लेख करते हुए कहा, "अभी एक देश से कुछ लोग हमारे भारत में पहली बार भ्रमण करने आये हैं । वे छत्तीसगढ़ में भी आये । उन लोगों ने मुझसे भारत की परिभाषा पूछी । मैंने कहा, 'भारतवर्ष विश्व का भविष्य है । छोटे देश विखर रहे हैं, लेकिन हमारा देश विश्वास के साथ आगे बढ़ रहा है और बढ़ता रहेगा, क्योंकि यहाँ का दर्शन यही दिखाता है कि हम भारत की संस्कृति तथा इसकी गौरवमयी परम्परा को कैसे आगे बढ़ायें । हम सभी को इसके विकास में भूमिका निभानी है । जिस देश में स्वामी विवेकानन्द जैसे महापुरुष हुये हों, वह देश दुनिया में अपना एक छाप डालने में समर्थ है । हम एक महान् देश के नागरिक हैं । हममें आसाधारण क्षमता है और हमें उसको अभिव्यक्त करना है । बच्चों की आँखों की ज्योति देखकर हमें अनुभूति होती है कि हम सब कुछ करने में समर्थ हैं ।"

तत्पश्चात् आश्रम के सचिव **स्वामी सत्यरूपानन्द जी** ने महामहिम राज्यपाल महोदय को सप्रेम उपहार के रूप में पुस्तकें भेंट कीं। उसके बाद महामहिम ने विजेता छात्र-छात्राओं को पुरस्कार प्रदान किये । आश्रम के छात्रावासीय बच्चों के 'हम होंगे कामयाब' गीत द्वारा सभा सुसम्पन्न हुई । कार्यक्रम का संचालन और धन्यवाद ज्ञापन **डॉ. ओमप्रकाश वर्मा जी** ने किया ।

आश्रम द्वारा राहत-कार्य

आश्रम की 'नारायण-सेवा' गतिविधि के अन्तर्गत २७ दिसम्बर, सोमवार को माँ सारदा की जयन्ती के उपलक्ष्य में और अन्य समय गरीबों को लगभग ५०० कम्बल तथा १०० कन्थाएँ बाँटी गयीं ।

आध्यात्मिक प्रवचन-माला

भक्तों में ईश्वर-भक्ति वृद्धि के लिये आश्रम के नव-निर्मित पांडाल में प्रतिदिन सायं ७ बजे से ९ बजे तक १५ जनवरी, शनिवार से २ फरवरी, बुधवार तक प्रवचन-मालाओं का आयोजन किया गया । १५ जनवरी से १९ जनवरी तक परम पूज्य युग-तुलसी मानस मर्मज्ञ श्रीरामकिंकर महाराज के कृपाश्रित प्रिय शिष्य **श्रद्धेय श्री मैथिलीशरण 'भाईजी'** के **'रामचरित मानस में स्वार्थ और परमार्थ'** विषय पर सारगर्भित और संगीतमय प्रवचन हुये । मिथिला से आये कलाकारों ने अपने मधुर कंठ से गाये भजन तथा बाँसुरी के टेर से सबका मन मोहित कर दिया । २० जनवरी, बृहस्पतिवार से २६ जनवरी, बुधवार तक वृन्दावन से आये भागवत उपासक **पं. अखिलेश शास्त्री जी** के भागवत के **'रासलीला'** पर तात्त्विक और विद्वत्तापूर्ण प्रवचन हुये । २७ जनवरी, बृहस्पतिवार से २ फरवरी, बुधवार तक **स्वामी राजेश्वरानन्द सरस्वती 'राजेश रामायणी' जी** के **'सेवायोग'** पर भक्तिपूर्ण संगीतमय मनोरंजक प्रवचन हुये

(विवरण प्रस्तुति – प्रणव कुमार पोटाई और विष्णु नुरेटी, विवेकानन्द आश्रम, रायपुर)

***